विज्ञान सद्गोष्ठी

(जून २०२०)

ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य
स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज का प्रवचन

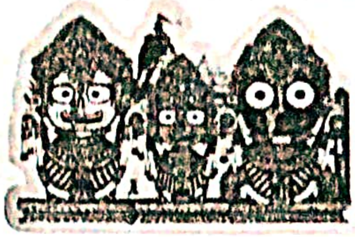

श्री हरिः

श्री गणेशाय नमः

विज्ञान सङ्गोष्ठी (जून २०२०)

(ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वती जी महाराज का प्रवचन)

हमारा लक्ष्य :-

सुसंस्कृत, सुशिक्षित, सुरक्षित, सम्पन्न, सेवा परायण, स्वस्थ और सर्वहितप्रद व्यक्ति तथा समाज की संरचना

सम्पादन – आदित्यवाहिनी हरियाणा

|| श्रीहरिः ||

|| श्रीगणेशाय नमः ||

विज्ञान सङ्गोष्ठी (जून २०२०)

विषयानुक्रमणी

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	विज्ञान सङ्गोष्ठी (दिवस १)	1
२.	विज्ञान सङ्गोष्ठी (दिवस २)	24
३.	विज्ञान सङ्गोष्ठी (दिवस ३)	45

इस प्रवचन में निम्नलिखित विषयों का समावेश है -

- विज्ञान की परिभाषा
- विद्या के भेद
- विज्ञान के स्रोत
- वेदविहीन विज्ञान के आलम्बन के कारण विस्फोट
- प्राणियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति का नियामक कौन?
- भगवान् के पाँच प्रकार के कृत्य
- कार्य और कारण
- महायन्त्रों के आविष्कार का प्रयोजन
- महायन्त्रों के आविष्कार ने मानवजीवन की अपूर्वता पर पानी फेर दिया
- अन्न के प्रभेद
- शास्त्रसम्मत कर्मोपसना के आलम्बन से अन्य लोकों में गमन सम्भव
- भौतिकवादियों को प्राप्त शाप
- स्वार्थ और परमार्थ में सामञ्जस्य साधकर चलने पर सर्वविध उत्कर्ष सम्भव

★★★★★

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगणेशाय नमः

विज्ञान सङ्गोष्ठी (जून २०२०)

(दिवस १)

आप महानुभावोंने आस्था और अपनत्व का परिचय देकर हमें अत्यंत प्रमुदित किया है। सङ्गोष्ठी का प्रथम विषय है - विज्ञान की परिभाषा (Definition of Science). मान्य महानुभावोंने बहुत ही उत्तम ढंग से अपने भावोंको व्यक्त किया है। मैं केवल सांकेतिक शब्दोंमें कुछ तथ्योंको उद्भासित करना उचित समझता हूँ। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने भगवद्गीताके छठे अध्याय, सातवें अध्याय, नौवें अध्याय और ग्यारहवें अध्यायमें विज्ञानसहित ज्ञानके उपदेशका निरूपण किया है -

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ -

श्रीमद्भगवद्गीता 7.2 का अनुशीलन करें।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनको कहा - विज्ञानसहित ज्ञानका मैं उपदेश करने जा रहा हूँ जिसे आत्मसात करनेपर कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रह जाता। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका यह वाक्य रहस्यपूर्ण है, सावधान! वेदान्त प्रस्थानके अनुसार जगत् का मूल कारण सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मतत्व सिद्ध है। उसकी

शक्तिका नाम ही प्रकृति है - ***ब्रह्मशक्तिरेव प्रकृतिः,*** उपनिषदोंका यह उद्घोष है। मान्य महानुभावोंने अपने वक्तव्यमें Nature या प्रकृतिका कई बार नाम लिया। वह Nature या प्रकृति क्या है - ब्रह्म / परमात्मा की शक्ति है।

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। (भगवद्गीता 9.10)

भगवान् श्रीकृष्णके इस वचनके अनुशीलनसे यह तथ्य ख्यापित होता है कि भगवान् से सत्ता, चित्ता, प्रियता प्राप्तकर उनकी शक्तिभूता त्रिगुणमयी प्रकृति जगत् की संरचना करती है। इसका अर्थ यह हुआ कि **जो भी पदार्थ हमको परिलक्षित होता है उसके मूलमें भगवान् और भगवान् की शक्ति सन्निहित है।** मैं संकेत करना उचित समझता हूँ कि वेदान्तवेद्य जो परमात्मतत्व या भगवत्तत्व या ब्रह्मतत्व है वो जगत् का न केवल निमित्त अपितु उपादान कारण भी है। Maker और Matter दोनों है। इसको समझनेकी आवश्यकता है। आधुनिक विज्ञान वाले कह सकते हैं - Matter is nothing but Energy. आगे क्या कहेंगे? गीताके आधार पर उन्हें यह आगे कहना चाहिये, उपनिषदों के आधार पर कहना चाहिये - Energy is nothing but Soul. आगे कहना चाहिये - Soul is the super source of Energy. इसका अर्थ यह है

कि मूलमें एक ही तत्व है। **हमारे भगवान् की यह चमत्कृति है कि वे जगत् बनाते भी हैं और जगत् बनते भी हैं।** सामने माइक नामक यन्त्र है। किसी ज्ञानवान्, इच्छावान्, प्रयत्नवान्, चेतन यान्त्रिक मैकेनिक ने लोहा और प्लास्टिक नामक matter (धातु) या पदार्थको माइक नामक यन्त्रका रूप प्रदान किया होगा। जो ज्ञानवान्, इच्छावान्, प्रयत्नवान्, चेतन यान्त्रिक या मैकेनिक किसी धातुको यन्त्रका रूप प्रदान करता है, उसे उस यन्त्रका निर्माता अर्थात् निमित्त कारण कहा जाता है। जो matter (धातु) या पदार्थ यन्त्रके रूपमें उल्लसित-विलसित होता है उसका नाम होता है उपादान कारण। इसका मतलब क्या हुआ? माइक बनाने वालेमें यह क्षमता नहीं थी कि वह स्वयं माइक बन जाये। और लोहा, प्लास्टिक में वह क्षमता नहीं थी कि वो माइक बना ले। लेकिन **हम जिस परमात्माको वेदादि शास्त्रों के आधार पर मानते हैं उसकी यह चमत्कृति है कि वह जगत् बनता भी है, जगत् बनाता भी है।** केवल मैं संकेत करना उचित समझता हूँ ताकि श्रोताओं के हृदय में इस तथ्यके प्रति आस्था उत्पन्न हो सके। आपके-हमारे जीवनमें स्वप्न एक अवस्थाके रूपमें प्राप्त है। स्वप्नावस्थामें आत्मचैतन्यसे अधिष्ठित हमारा-आपका मन या अन्तःकरण ही पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश, दिक्, काल, स्थावर, जङ्गम प्राणियोंके रूपमें उद्भासित होता है। इसका अर्थ क्या हुआ? **मनके योगसे / मनोयोग से स्वप्नावस्थामें हम-आप ही पृथ्वीके रूपमें, जलके रूपमें, तेजके**

रूपमें, वायुके रूपमें, आकाशके रूपमें, दिक् के रूपमें, कालके रूपमें, स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके रूपमें उद्भासित होते हैं। ऐसा बल और वेग स्वप्नावस्थामें हमको क्यों प्राप्त हो जाता है? स्थूलप्रपञ्च और स्थूलशरीर का भान स्वप्नावस्थामें नहीं होता। इसलिए हमारे-आपके जीवनमें स्थूलप्रपञ्च, स्थूलदेह से उपरामताके कारण उस बल और वेग का नि:सर्गसिद्ध उदय होता है जिसके फलस्वरूप हम स्वप्नमें स्वयं ही पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन, आकाश, दिक्, काल और समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणी बन जाते हैं। जिस प्रकार स्वप्नप्रपञ्च के हम अभिन्ननिमित्तोपादान कारण सिद्ध होते हैं उसी प्रकार भगवान् सम्पूर्ण जगत् के अभिन्ननिमित्तोपादान कारण सिद्ध हैं।

तदैक्षत, स ईक्षां चक्रे, सोऽकामयत, बहु स्यां प्रजायय, तदात्मानं....

साथ-ही-साथ '*प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्।।*' इन वचनोंके आधारपर वेदान्तवेद्य जो भगवत्तत्व, परमात्मतत्व, ब्रह्मतत्व है वह जगत् का न केवल निमित्त अपितु उपादान कारण भी सिद्ध होता है। तो हमने संकेत किया कि एक के ज्ञानसे सबका विज्ञान, यह चमत्कार है या नहीं? भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने इसीकी ओर अर्जुनका ध्यान केन्द्रित किया - ***यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।।*** (भगवद्गीता 7.2)

इसकी व्याख्या समय सापेक्ष है केवल मैंने संकेत किया है। और मैं कहना चाहता हूँ - **ज्ञान और विज्ञान दोनों का सम्मिलित रूप ही विद्या है**। बहुत ऊँची बात है। बृहद्जाबालोपनिषद् में एक वचन आता है - ***विद्या शक्ति समस्तानां शक्तिरित्यभिधीयते*** - विश्व में जितनी भी शक्तियाँ हैं उनमें सबसे उत्कृष्ट शक्तिका नाम ही सज्जनों **विद्या** है। उस विद्याके भी **परा** और **अपरा** दो भेद हो जाते हैं। अचित् पदार्थ, अनात्म पदार्थ, दृश्यप्रपञ्च, प्रकृति और पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये जितने तत्व हैं उनके ज्ञान या विज्ञान का नाम **विद्या** है। लेकिन जिसके कारण पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और प्रकृति में सत्ता, चित्ता, प्रियता प्राप्त है, स्फूर्ति प्राप्त है, अर्थक्रियाकारिता प्राप्त है उस ब्रह्मका ज्ञान या आत्माका ज्ञान **विज्ञान** कहा जाता है। **सामान्य बोधका नाम सज्जनों ज्ञान है और विशेष बोधका नाम विज्ञान होता है**। मैं एक संकेत करना उचित समझता हूँ - जैसे किसी व्यक्ति ने कहा 'किम् इदं - यह क्या है?' सामने वाले ने कहा - यह स्वर्ण धातु है। यह सामान्य ज्ञान हो गया। लेकिन फिर कहा कि 'ये क्या हैं'? उत्तर देने वाले ने कहा - स्वर्ण धातु से विनिर्मित कटक, मुकुट, कुण्डलादि आभूषण हैं, गिलास, लोटा, थाली इत्यादि पात्र हैं। इसका मतलब क्या हुआ? वस्तुके दो भेद होते हैं - एक सामान्य वस्तु होती है, एक विशेष वस्तु होती है। इसी तरहसे ज्ञानके भी दो भेद हो जाते हैं। एक सामान्य कोटिका ज्ञान होता है और एक विशेष कोटिका विज्ञान होता है। यह जो विशेष कोटिका

ज्ञान अथवा विज्ञान होता है उसीका नाम साईंस है, उसीका नाम विज्ञान है।

मैं एक संकेत करना उचित समझता हूँ - सोने (स्वर्ण) का ज्ञान सामान्य ज्ञान हो गया लेकिन स्वर्णाभूषणका ज्ञान विशेष ज्ञान हो गया। सामान्य पदार्थ ही जब विशेष रूपमें परिणत हो जाता है या सामान्य पदार्थको जब विशेष रूप दे दिया जाता है तब क्या होता है? उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। इस सन्दर्भमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि **सामान्यकी विद्यमानताके कारण ही विशेषकी सत्ता और उपयोगिता सम्भव है**। अगर हम स्वर्ण धातुको नहीं मानेंगे, स्वर्ण धातु स्वर्णाभूषणको साधे न हो तो स्वर्णाभूषणकी कोई उपयोगिता नहीं रहेगी, न सत्ता रहेगी। स्वर्ण धातु केवल स्वर्ण धातुके रूप में रहे तो उसकी विशेष उपयोगिता नहीं होगी। वैज्ञानिक कौन उत्कृष्ट होता है? जो सामान्यको विशेषका रूप देनेमें समर्थ होता है और विशेषको पुनः सामान्यका रूप देनेमें समर्थ होता है वही उच्च कोटिका वैज्ञानिक कहा जाता है। अन्नपूर्णोपनिषद् में इस तथ्यका विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है -

" ***विशेषं संपरित्यज्य सन्मात्रं यदलेपकम्। एकरूपं महारूपं सत्तायास्तत्पदं विदुः*** " महाप्रलयकी दशामें क्या होता है? ध्यान दें। **वैज्ञानिक उच्च कोटिके कौन होते हैं - जो प्रलय और सर्ग की मीमांसाको ठीक-ठीक समझते हैं। सृष्टिकी उत्पत्ति और संहारकी प्रक्रियाको ठीक-ठीक समझने वाले उच्चकोटिके वैज्ञानिक होते हैं।**

मैंने संकेत किया कि **विशेषको सामान्यका रूप देते चलिये तो महाप्रलयकी स्थिति हो जाएगी**। ये आरोह क्रम है। ऊपर चढ़ना है। प्रलयके समय क्या होता है? पार्थिवप्रपञ्चका लय पृथ्वी में हो जाता है, पृथ्वीका लय जलमें हो जाता है, जलका लय तेजमें हो जाता है, तेजका लय वायुमें हो जाता है, वायुका लय आकाशमें हो जाता है, आकाशका लय प्रकृति / अव्यक्त / माया प्रधानमें हो जाता है, उसका विलय परमात्मामें हो जाता है। **यह प्रलयकी प्रक्रिया है** - विशेषको सामान्य रूप देना। समान और विशेषमें भी एक विभाजक रेखा है। सन्निकट निर्विशेषका नाम कारण होता है और सन्निकट सविशेषका नाम कार्य होता है। इसपर हम कालांतरमें विषयके आधारपर बोलेंगे। फिरसे सुन लीजिये - हमारे यहाँ पदार्थोंके निर्धारणकी एक प्रक्रिया है। **सन्निकट निर्विशेषका नाम कारण होता है और सन्निकट सविशेषका नाम कार्य होता है।** उदाहरणके लिये - पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध पाँचों गुण विद्यमान हैं। लेकिन जलमें, प्रमाणिक रीतिसे विचार करें तो गन्ध स्वतः सिद्ध नहीं है, जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस चार ही गुण विद्यमान हैं। इसलिए पृथ्वीका उद्भव स्थान या कारण जल ही हो सकता है अन्य कोई नहीं। जलका उद्भवस्थान तेज ही हो सकता है अन्य कोई नहीं। तेजका उद्भव स्थान वायुतत्व ही हो सकता है अन्य कोई नहीं। वायुतत्वका उद्भवस्थान आकाश ही हो सकता है अन्य कोई नहीं। आकाशका उद्भवस्थान अव्यक्त ही हो सकता है और

कोई नहीं। अव्यक्तका अधिष्ठान या आश्रय ब्रह्मतत्व, भगवत्तत्व या आत्मतत्व ही हो सकता है और कोई नहीं। बीजमें अंकुरोत्पादिनी शक्ति न रहे या बीजको भून दें या घुन लग जाये तो बीजका रूप क्या रहेगा? पृथ्वीके रूपमें बीज परिणत। इसीप्रकार प्रकृति जिसको Nature कहते हैं या अव्यक्त कहते हैं उससे प्रपञ्चोत्पादिनी क्षमता जब भगवान् हटा लेते हैं तो प्रकृति ही परमात्मतत्व में विलीन हो जाती है तो हमने संकेत किया - सन्निकट निर्विशेषका नाम कारण है, सन्निकट सविशेषका नाम कार्य है। कार्य-कारण के विभाजनकी यही रेखा है।

विज्ञान के बारे में कहना चाहता हूँ - **सामान्य ज्ञानका नाम ज्ञान ही होता है। विशेष बोधका नाम विज्ञान होता है।** वस्तुके हेतु का, उसकी संरचना का, स्वरूप का, स्वभाव का, प्रभाव का, प्रयोजन का, प्रयोग का जब विशद ज्ञान होता है उसी का नाम विज्ञान हो जाता है। ज्ञानके साथ विज्ञान और विज्ञानके साथ ज्ञान। **सविशेष और निर्विशेष दोनोंका जब ज्ञान होता है तब व्यक्तिका जीवन उन्नत होता है,** हमने एक संकेत किया।

तीसरा विषय है **'विज्ञान के स्रोत'**- मैं समयकी सीमामें एक तथ्य उद्भासित करना उचित समझता हूँ।

परमात्मा ही ज्ञान-विज्ञान के स्रोत हैं। हाँ! एक बात है - जो नास्तिक प्रायः हैं, वेदादि शास्त्रोंसे विमुख व्यक्ति हैं या आधुनिक धारामें बहने वाले हैं, वे कह सकते हैं कि परमात्मा या ब्रह्म कोई काल्पनिक पदार्थ है या सचमुच में है भी? उनकी इस जिज्ञासा या उनके इस संशयका उत्तर देना भी मैं उचित समझता हूँ क्योंकि सङ्गोष्ठीमें यान्त्रिक विधासे विश्वस्तर के महानुभाव, वैज्ञानिक और श्रोता विद्यमान हैं। यदि विश्वमें अन्नका अस्तित्व न हो तो किसीको भूख ना लगे। भूख का लगना डंकेकी चोटसे इस तथ्यको सिद्ध करता है कि विश्वमें अन्नका अस्तित्व अवश्य है। अगर विश्वमें जल या पानी का अस्तित्व न हो तो किसी को प्यास न लगे। प्यासका लगना डंकेकी चोटसे इस तथ्यको ख्यापित करता है कि विश्वमें जल का अस्तित्व है। इसी प्रकार स्थावर प्राणी हों या जङ्गम प्राणी अन्तर्निहित सबकी भावना क्या होती है, इस पर विचार करें। कहा जा सकता है कि तरु, लता, गुल्म इत्यादि जो उद्भिज्ज नामक स्थावर प्राणी हैं, जगदीशचन्द्र बसु जी ने प्राचीन तथ्योंको यान्त्रिक विधासे ख्यापित किया। वे भी हमारे यहाँ उद्भिज्ज कोटि के स्थावर प्राणी हैं। इसीप्रकार जङ्गम प्राणियोंमें अण्डज, स्वेदज, जरायुज होते हैं। ऊपर के जो प्राणी होते हैं वे मनसिज होते हैं, स्वयम्भू होते हैं। प्राणियोंके विविध विभाग होते हैं लेकिन मैंने एक संकेत किया - हम, जितने प्राणी हैं उनकी प्रवृत्ति-निवृत्ति को जान पायें यह कठिन है लेकिन अपना जीवन चौबीसों घण्टे अपने साथ है। हमारी हर

प्रवृत्ति और निवृत्ति का विषय क्या है? इसका अर्थ क्या है - हमारी प्रवृत्ति और निवृत्ति का नियामक कौन है? इसका अर्थ है हमारी चाह या इच्छा का विषय कौन है? सार्वभौम सिद्धान्त है इसमें हिन्दू, अहिन्दू की बात नहीं स्थावर-जङ्गम प्राणी उभयसम्मत यह सिद्धान्त है कि मृत्युके चपेटसे विनिर्मुक्त ऐसा जीवन जहाँ मौतकी छाया भी न पहुँच सके। हमारी प्रवृत्ति या निवृत्तिका प्रथम नियामक यही है। भूखा व्यक्ति भोजन करने में क्यों प्रवृत्त होता है? भूखे व्यक्तिकी भोजन करने में प्रीति-प्रवृत्ति का नियामक कौन है? मृत्यु का भय। कहीं भूखके चपेट में आकर मर न जाऊँ, दम न तोड़ दूँ.... और जहाँ मृत्युका भय होता है फलवलकल्प या अर्थापत्ति प्रमाणके द्वारा यह तथ्य सिद्ध है कि अमृतत्व की भावना अवश्य होती है। भूखा व्यक्ति जब भरपेट अभीष्ट भोजन कर लेता है तो भोजन से उपरामता में नियामक कौन है? कहीं अफरा के कारण, अजीर्ण के कारण, संग्रहणी के चपेट में आकर मर न जाऊँ। **इसका अर्थ है कि प्राणियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति का पहला नियामक है *मृत्यु का भय, अमृतत्व की भावना*। हम ऐसा जीवन चाहते हैं जहाँ मौत की छाया भी न पहुँच सके।** जब तक कोई मृत्युञ्जय तत्व न हो, अमृतस्वरूप तत्व न हो, सत्य न हो तब तक उसकी चाह कैसे हो? हमारी चाह का विषय नित्य है, सत्य है, अमृतस्वरूप है, मृत्युञ्जय है और सबसे शुभ सन्देश यह है वह कोई अन्य नहीं अपना ही वास्तविक स्वरूप है। बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार, चाक्षुषोपनिषद् के अनुसार

- असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय, **हमारी चाह का विषय है - सत् या अमृतत्व। ऐसा जीवन जहाँ मौत की छाया भी न पहुँच सके, मृत्यु से पारङ्गत जीवन हम चाहते हैं।** जब तक कोई सत् तत्व है ही नहीं तब तक उसकी चाह कैसे हो? अनित्य के मूल में अनित्य तो मान ही नहीं सकते हैं, नित्य ही समग्र अनित्यों का साधक हो सकता है। समग्र अनित्य पदार्थों में जिससे सत्ता, चित्ता, प्रियता की स्फूर्ति होती है उसी का नाम नित्य है।

हम क्या चाहते हैं? **हमारी प्रवृत्ति या निवृत्ति का दूसरा नियामक क्या है? जड़ता, अज्ञता, मूर्खता के चपेट से विनिर्मुक्त होकर अखण्डज्ञानस्वरूप होकर हम शेष रह सकें।** कोई अखण्ड ज्ञान नामक तत्व है, बोध नामक तत्व है, चिद् धातु है तभी हमारी चाह का विषय वह तत्व हो पाता है।

हमारी तीसरी भावना क्या होती है? दैहिक, दैविक, भौतिक त्रिविध तापों के चपेट से विनिर्मुक्त आनन्दस्वरूप होकर हम शेष रह सकें, दुःख किसी भी जीव को पसन्द नहीं है। आनन्दस्वरूप होकर प्रत्येक जीव रहना चाहता है। इसका अर्थ हुआ सत्, चित्, आनन्द हमारी चाह का निःसर्गसिद्ध विषय है। उसका अस्तित्व है तभी वह हमारी चाह का विषय है, इसलिए नास्तिक से नास्तिक व्यक्ति भी

इस प्रकार से यदि हम परमात्मतत्व का निरूपण करें तो उसे स्वीकार करने के लिये उत्सुक होगा।

समग्र ज्ञान-विज्ञान के स्रोत वेदादि शास्त्र हैं क्योंकि भगवान् के निःश्वासकल्प हैं।

भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति (मनु स्मृति)
यच्चत्रिकालातीतम् तदपि ओङ्कार एव। (माण्डूक्य उपनिषद्)

मनु महाराजने और माण्डूक्य उपनिषद् ने एक तथ्य ख्यापित किया कि जो कुछ कालगर्भित पदार्थ हैं अथवा कालातीत पदार्थ हैं सबका ज्ञान-विज्ञान वेदोंके अनुशीलनसे प्राप्त हो सकता है। हमारे वेद ऋक्, यजु, साम और अथर्व ही विविध पुराणोंके रूप में, महाभारतके रूप में, वाल्मीकि रामायण के रूप में विशद व्याख्याके सहित हमको प्राप्त हैं। इसलिए वेद विद्या और कला के उद्गम स्थान हैं। याज्ञवल्क्य स्मृतिके अनुसार अन्य विद्याओंका अन्तर्भाव कर दें तो चौदह विद्यामें समग्र विद्याओं का सन्निवेश हो जाता है। शिवपुराण के अनुसार अठारह विद्याओंमें अन्य विद्याओंका सन्निवेश हो जाता है। इसी प्रकारसे हम विचार करें तो शुक्रनीतिके अनुसार बत्तीस विद्याओंमें अन्य विद्याओंका सन्निवेश हो जाता है। तो चौदह विद्या हों या अठारह विद्या हों या सीतोपनिषद् के अनुसार

पच्चीस विद्याके प्रभेद हों या शुक्रनीतिके अनुसार बत्तीस विद्याके प्रभेद हों। सबका अभिप्राय क्या हुआ? **सीतोपनिषद् के अनुसार 25 विद्या, शुक्रनीति के अनुसार 32 विद्या, याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार 14 विद्या और शिवपुराण के अनुसार 18 विद्या की सिद्धि होती है। विश्व में जितनी विद्या है उन सबका अन्तर्भाव वेदों में हो जाता है।** और चौसंठ कलाओं का मैंने संकेत किया - नृत्य, गान इत्यादि। समस्त कलाओंका अन्तर्भाव वेद में हो जाता है। यह जो प्रकृति है विद्या और कला का स्रोत है। मैं एक संकेत करना चाहता हूँ - उत्तम वैज्ञानिक कौन होगा? न्यूटन इत्यादि का नाम लोगोंने लिया लेकिन **वैशेषिक दर्शन इत्यादि में तो गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त पहले से ही विद्यमान था।** इसलिए विज्ञान के स्रोत कौन हैं? **पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, दिक्, काल, अव्यक्त जिसको प्रकृति / माया / प्रधान / शक्ति भी कहते हैं और परमात्मा यही विज्ञान के स्रोत हैं।**

एक संकेत कर देना मैं समय की सीमा में उचित समझता हूँ, तीन शब्दों पर ध्यान केन्द्रित करें - एक होता है मन्त्र, दूसरा होता है तन्त्र, तीसरा होता है यन्त्र। जो उत्तम वैज्ञानिक हैं वे इस बातको अच्छी प्रकार जानते हैं। मन्त्र का अर्थ क्या हुआ? पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि में जो सिद्धान्त पहले से सन्निहित हैं सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा, तपोबल के द्वारा, उच्च मेधाशक्तिके द्वारा जब व्यक्ति उन

सिद्धान्तोंका अनुशीलन करता है, दर्शन करता है तो उसी को मन्त्रविद् कहते हैं। **ऋषि-मुनि मन्त्रार्थविद् होते थे। मन्त्रके द्रष्टा होते थे कर्ता नहीं।** इसी प्रकारसे उत्तम वैज्ञानिक कौन होता है? मन्त्रविद् कौन होता है? यहाँ मन्त्रका अर्थ होता है - पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इसी प्रकार से अव्यक्त में जो सिद्धान्त सन्निहित हैं जिसके आधारपर भगवान् उत्पत्ति, स्थिति, संहार, निग्रह, अनुग्रह पाँच प्रकारके कृत्यों का सम्पादन करते हैं। उन सिद्धान्तोंका जो जानकार है वह मन्त्रविद् है। **ऊँचा वैज्ञानिक कौन होगा? जो पृथ्वी में, जल में, तेज में, वायु में, आकाश में, इसी प्रकार से अव्यक्त में अनुगत सिद्धान्त हैं उनका जानकार हो।** इसलिए हमने संकेत **किया। विज्ञानका स्रोत क्या है? पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अव्यक्त और परमात्मा। इस ढंग से विज्ञानको परिभाषित करनेकी आवश्यकता है।**

साथ-ही-साथ प्रत्येक अंश सपने अंशी की ओर समाकृष्ट होता है। गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त अगर हम अपने ग्रन्थोंमें देखें, केवल एक नियम मैंने कहा - प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने अंशी की ओर आकृष्ट होता है। इसीके आधारपर हजारों यन्त्रों का निर्माण हो सकता है। हमने एक सेब का फल लिया, बल और वेग पूर्वक ऊपर उछाल दिया, बल और वेगके निरस्त हो जाने पर वह फल नीचे की ओर ही क्यों आकृष्ट होगा? क्योंकि वह पार्थिव है। गन्धयुक्त है। जो

भी पृथ्वी का कार्य पार्थिव पदार्थ होता है उसके आकर्षण का केन्द्र या क्षेत्र पृथ्वी ही सम्भव है। प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने अंशी की ओर आकृष्ट होता है। गङ्गा, यमुना, सरस्वती इन सब नदियोंकी जो जलधारा है समुद्र की ओर ही आकृष्ट है क्योंकि महोदधि उसका उद्गम स्थान है। प्रत्येक अंश अपने अंशी की ओर आकृष्ट होता है। अग्नि प्रज्वलित करते हैं तो अग्निकी शिखा ऊपरकी ओर क्यों जाती है? क्योंकि वह नभोमण्डल में विद्यमान आदित्य या सूर्य का अंश है। सूर्य उसके अंशी हैं। प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने अंशी की ओर आकृष्ट होता है। हमारे-आपके जीवनमें व्यष्टि पवन है जिसको प्राण कहते हैं। उसके आकर्षण का विषय समष्टि पवन अर्थात् वायु तत्व ही है। इसी प्रकारसे घटगत, मठगत जो आकाश है उनके आकर्षणका केन्द्र व्यापक आकाश ही है। तो प्रत्येक अंश स्वभावतः अपने अंशी की ओर आकृष्ट होता है। जीव भी, प्रमाणिक रीति से विचार करें तो सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वेश्वर का सनातन अंश सदृश सिद्ध है। इसलिए जीवके आकर्षणका विषय भी प्रतिक्षण भगवत्तत्व / परमात्मतत्व ही सिद्ध होता है। इसका उदाहरण मैंने पहले ही दे दिया कि हर व्यक्तिकी चाह का विषय भगवत्तत्व / परमात्मतत्व ही है। क्योंकि मृत्यु, अज्ञता, दुःख के चपेटसे विनिर्मुक्त जीवनकी भावना ही सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वरकी चाह को सिद्ध करने में समर्थ है। भगवान् श्रीकृष्ण ने -

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।। (भगवद्गीता 9.10)

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ।। (भगवद्गीता 14.3)

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति । (भगवद्गीता 8.20)

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमा ।
सूर्यः पुमांस्तथा चेति मूर्तयश्चाष्टकीर्तिताः ।।
(नारायणपूर्वतापिन्युपनिषद्)

इस प्रकार मैंने विज्ञानके स्रोत का संक्षेप में वर्णन किया। अब दो-तीन मिनट की सीमा में हिन्दी में उसका अर्थ कहता हूँ। भगवद्गीताके आठवें अध्यायका अनुशीलन कीजिये, जितने पदार्थ हैं उनको हम तीन शब्दों में ख्यापित कर सकते हैं। कार्य कोटि के जितने पदार्थ हैं - पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश उनको व्यक्त कहते हैं। आपको सुनकर आश्चर्य होगा, हमारे नैयायिक तो मूर्छित हो जायेंगे, वैशेषिक तो मूर्छित हो जायेंगे, पूर्वमीमांसक तो इस बात को सुनकर मूर्छित हो जायेंगे, बहुत से व्यक्ति अगर हम नग्न भाषा में

बोल दें तो सुनकर ही बेहोश हो जायेंगे, बेसुध हो जायेंगे, मूर्छित हो जायेंगे - आकाश की भी उत्पत्ति साङ्ख्य प्रस्थान को, योग प्रस्थान को, वेदान्त प्रस्थान को मान्य है। अब थोड़ा विचार कीजिये, कल्पना कीजिये थोड़ी देर, ब्रेन हेमरेज से बचने की भावना से - आकाश का लय हो जायेगा... तो मन डाँवाडोल हो जायेगा... तब क्या रहेगा? आकाशकी उत्पत्ति भी होती है - ***एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः।*** तो मैंने संक्षेप में कहा। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश... सामान्य रीति से जो ये पाँच तत्व हैं / व्यक्त हैं / कार्य कोटि के पदार्थ हैं, भगवद्गीता के आठवें अध्याय के अनुसार।

और जो प्रकृति या नेचर शब्द का बार-बार प्रयोग किया गया, वही जो है वह आकाश का भी कारण है। पञ्चभूतों का उद्गमस्थान प्रकृति है। एक और विचित्र तथ्य है - साङ्ख्य प्रस्थानके अनुसार, वेदान्त प्रस्थानके अनुसार कोई भी कारण अपनेसे अधिक विशेषता वाले कार्य को उत्पन्न करके भी अपने स्वरूप को अवशिष्ट रखता है। ऐसा नहीं कि उसका विलोप हो जाता। जैसे मिट्टी जब घट, कुल्हड़ आदि का रूप धारण करेगी तो भी मिट्टी की विद्यमानता रहेगी। स्वर्ण धातु जब स्वर्णाभूषण का रूप धारण करेगी तो भी स्वर्ण धातु की विद्यमानता रहेगी। जल जब तरङ्गमाला का रूप धारण करेगा तो भी जल की विद्यमानता रहेगी। एक तत्व अपने से अधिक विशेषता वाली वस्तु को उत्पन्न करके भी अपने स्वरूपका विलोप नहीं करता।

तो जो व्यक्त / कार्य कोटि के पदार्थ हैं उनको एक श्रेणी में रखिये, फिर अव्यक्त। व्यक्त और अव्यक्त दोनों का आश्रय जो परम अव्यक्त, अक्षर अव्यक्त या सनातन अव्यक्त है, भगवद्गीता में उसीको चैतन्य / चिद् रूप भगवत्तत्व के रूप में उद्भासित किया गया है।

भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमा।
सूर्यः पुमांस्तथा चेति मूर्तयश्चाष्टकीर्तिताः।।

यह सब क्या हैं? ज्ञान-विज्ञान के स्रोत हैं। इस उपनिषद् वचन में पाँच भूतों के अतिरिक्त तेज के विलास या उल्लासरूप चन्द्रमा का भी नाम है, सूर्य का नाम भी है। और पुमान् का अर्थ होता है जीव। जीव स्वयं, पञ्चभूत और विशेषकर तेज के जो उल्लास-विलास चन्द्रमा और सूर्य हैं, ये सब-के-सब विज्ञान के स्रोत हैं। हमने संकेत किया। इसका अर्थ यह होता है कि पृथ्वी में, जल में, तेज में, वायु में, आकाश में जो नियम सन्निहित हैं वैज्ञानिक उन नियमों को आत्मसात कर लेता है। मैंने तीन शब्दों का प्रयोग किया था - मन्त्र, तन्त्र, और यन्त्र। आगे का जो विषय होगा - वैज्ञानिक सिद्धान्त को यन्त्र का रूप कैसे प्रदान किया जाता है उस विषय पर हम विस्तारपूर्वक प्रकाश डालेंगे। अभी केवल संकेत करना चाहते हैं। उत्तम वैज्ञानिक कौन होगा? पृथ्वी में, जल में, तेज में, वायु में,

आकाश में पहलेसे जो विद्यमान सिद्धान्त हैं उनको आत्मसात करे, विधिवत् उनका अनुशीलन करे। यह हो गया मन्त्र। मन्त्र माने यन्त्रगत सिद्धान्त। उसका दर्शन करने वाले वैज्ञानिक हो गये। उसके बाद उस सिद्धान्त को, जैसे गुरुत्वाकर्षण का तीसरा सिद्धान्त - *To every Action there is an Equal and Opposite Reaction. प्रत्येक क्रिया की समान और विपक्षी प्रतिक्रिया होती* है - यह जो सिद्धान्त है उसको यन्त्र का रूप दिया गया। **तो मन्त्र माने अनुगत सिद्धान्त होता है, उसको यन्त्र तक पहुँचानेके लिये प्रोसेस / method या विधा का नाम तन्त्र होता है। और यन्त्र के माध्यमसे फिर विविध कार्योंका सम्पादन होता है।** श्रीयन्त्र इत्यादि। आप अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। हमारे यहाँ श्री मन्त्र है, श्री तन्त्र है और यन्त्र भी है। **तो मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र तीनों का जो विशेषज्ञ होता है वह उच्चकोटि का वैज्ञानिक होता है। मन्त्र माने अनुगत सिद्धान्त। तन्त्र माने उस सिद्धान्त को यन्त्र के माध्यमसे लोकोपकारक बनानेकी जो विधा है / प्रोसेस है / method है / clasification है / वर्गीकरण है / एक विधा को प्रशस्त रूप देना है उसी का नाम तन्त्र होता है। मन्त्र और तन्त्र का जानकार जो होता है अंत में क्या हो जाता है? यन्त्र के निर्माण में समर्थ होता है।**

एक-दो वाक्य और मैं कह दूँ - यह सच्ची बात है यह तथ्य है कि जो कुछ हमारे-आपके जीवन में उत्कर्ष है, विज्ञान की देन है,

वैज्ञानिकों की देन है लेकिन कोरोना नामक विभीषिका यह कहाँ से आ गई? लगभग 100 वर्षों से विज्ञान का नाम लेकर जो महायन्त्रों का प्रचुर आविष्कार और प्रयोग किया गया, विकास को जिस ढंग से परिभाषित करने की विधा चली, उसके क्रियान्वित करने की विधा चली, वेदादि शास्त्रसम्मत ढंग से विकास को परिभाषित और क्रियान्वित करने का प्रकल्प लुप्त हो गया उसी के चपेट से यह समस्या आई है क्योंकि पुराणों के अनुसार यह सिद्ध होता है, नारायण तापनी उपनिषद् के अनुसार यह सिद्ध होता है कि व्यष्टि-समष्टि चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड पञ्चभूतों के कार्य हैं, हमारा-आपका शरीर भी पाञ्चभौतिक है। इस दृष्टि से विचार करें तो **जब हम विकास के नाम पर पृथ्वी को, पानी को, प्रकाश को, पवन को, आकाश को विकृत कर देते हैं, क्षुब्ध कर देते हैं, कुपित कर देते हैं तो इस प्रकार की महामारी उत्पन्न होती है।** इसलिये *कितनी चिड़िया उड़े आकाश चारा है धरती के पास* ... हम ऊँचाई तक उड़ान भर लें **लेकिन अन्तमें जो ऋषियों ने विकासको परिभाषित और क्रियान्वित किया उसी ढंग से चलने पर हमारा कल्याण हो सकता है।**

मैं एक संकेत करना चाहता हूँ - **विज्ञान को दिशाहीन होने से बचाने की विधा क्या हो सकती है? सृष्टि की संरचना और जीवों की प्रवृत्ति-निवृत्ति का आकलन करनेपर जो तथ्य उद्भासित होता है उस तथ्यको समझकर उसकी पूर्तिके लिये विकासको जब हम**

परिभाषित और क्रियान्वित करते हैं तो विकासका पर्यवसान विस्फोट में नहीं होता।

एक संकेत और कर देना उचित समझता हूँ... बुरा न मानो होली है... हमने विकास के नाम पर विस्फोट को ही प्राप्त किया है क्योंकि सृष्टि की संरचनाका उद्देश्य हमको मालूम नहीं है, अपने जीवन की प्रवृत्ति-निवृत्ति का आकलन प्राप्त नहीं है। छान्दोग्य श्रुति के आठवें अध्याय के भाष्य में शङ्कराचार्य महाभाग ने एक विचित्र तथ्य उद्भासित किया.. जितने भौतिकवादी होते हैं उनको अध्यात्म के आगे, अध्यात्मनिष्ठ महानुभावों के आगे घुटना क्यों टेकना पड़ता है? '*अध्यात्मविद्या विद्यानां*' इस तथ्य को क्यों अपनाना पड़ता है? बुरा न मानो होली है... **भौतिकवादियों की दृष्टि केवल वर्तमान तक सीमित रहती है क्योंकि भौतिकवादी विषयलम्पट होते हैं, देहात्मबुद्धि सम्पन्न होते हैं और इन्द्रियों की लाचारी है कि इन्द्रियाँ वर्तमान तक ही सीमित हैं।** 'मन' हम जीवों का दिव्य चक्षु है। छान्दोग्य श्रुति के आठवें अध्याय के अनुसार मन की गति भूत, भविष्य, वर्तमान और परमात्मा (कालातीत) में भी होती है। इन्द्रियों के गति केवल वर्तमानमें होती है इसलिए भौतिकवादियोंके द्वारा जो विकासको परिभाषित और क्रियान्वित करते हैं तो उसके गर्भ से विस्फोट निकल आता है। **अतः विकासको परिभाषित और क्रियान्वित करनेके लिए यह आवश्यक होता है कि सृष्टिकी संरचना**

का प्रयोजन क्या है, मानव या अन्य जितने प्राणी हैं उनकी प्रवृत्ति-निवृत्ति का नियामक कौन है, इसको समझें और इन्द्रिय तादात्म्यापत्तिसे ऊपर उठकर हम मन की ओर जायें और मन का भी नियामक जो आत्मतत्व है...आत्मदृष्टि से सम्पन्न जब हमारी मेधाशक्ति होगी तो हम विविध आविष्कार कर सकेंगे।

अंत में दो वाक्य, ध्यानपूर्वक सुनें, शिवपुराण के अनुसार मैं बोल रहा हूँ - हमने पाँच शक्तियों का नारायणतापनी उपनिषद् के अनुसार नाम लिया। भगवान् के पाँच कृत्य हैं। **वैज्ञानिक** भी जो उत्तम होते हैं पाँच में से कोई ना कोई कृत्य करते हैं ***उत्पत्ति, स्थिति, संहार, निग्रह*** और ***अनुग्रह।*** पृथ्वी में ***उत्पत्ति*** नामक कृत्य की प्रधानता है। स्पष्ट है स्थावर-जङ्गम प्राणियों के शरीर पृथ्वी से उत्पन्न होते हैं। जल में ***स्थिति*** नामक - जीवन देने की क्षमता है। जल का वीज मन्त्र क्या है? **व (वं)**। **वं** का अर्थ होता है अमृत। पृथ्वी का वीज मन्त्र है **लं**। तो हमने संकेत किया कि जल में जीवनी शक्ति है पालनी शक्ति है। अग्नि (तेज) में **संहार** की शक्ति सन्निहित है। वायु में तिरोधान (**निग्रह**) की शक्ति है। आकाश में **अनुग्रह** की शक्ति है। **भगवान् के ये पाँच कृत्य हैं। कौन-कौन से? उत्पत्ति, स्थिति, संहार, निग्रह, अनुग्रह**। और वैज्ञानिक भी जो उच्च कोटि का होता है वह पाँच प्रकार का आविष्कार कर सकता है। जितने आविष्कार हैं उनके भेद पाँच ही हो सकते हैं। उत्पादनपरक या उत्पत्ति, स्थिति,

पालन, संहार.. यह एटम बम.. ये सब क्या हैं? संहार परक। इसी प्रकार से निग्रह परक या नियन्त्रण परक... ताकि पृथ्वी धंस न जाये। भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में '**धारयाम्यहमोजसा**'.. भगवान् ने पृथ्वी को धारण कर रखा है ताकि नीचे न जाये तो हमने यह संकेत किया कि उत्पादिनी शक्ति, पालनी शक्ति, संहार की शक्ति, निग्रह की शक्ति और अनुग्रह की शक्ति। **आकाश का अध्ययन करके हम अनुग्रहकी शक्तिको प्राप्त कर सकते हैं, विविध आविष्कारों के द्वारा सबको जीवन प्रदान कर सकते हैं।** वायु का विधिवत् अध्ययन करके हम तिरोधान या निग्रह शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। नियन्त्रण की क्षमता। तेज का अनुशीलन करके हम **संहार शक्ति को भी उपयोग कर सकते हैं, जल का अध्ययन करके हम पालनी शक्ति को उद्भासित कर सकते हैं, पृथ्वी का अध्ययन करके हम उत्पादिनी शक्ति को भी उज्जीवित कर सकते हैं।** तो विज्ञानके भी पाँच प्रभेद हो जाते हैं। विज्ञानके स्रोत का मैंने वर्णन किया - पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और दिक्, काल का सन्निवेश इन्हीं में हो जाता है। बीच के अहम् तत्व और महत् तत्व का बुद्धिपूर्वक मैंने पृथक् से नाम नहीं लिया। फिर अव्यक्त, प्रकृति या नेचर है और फिर परमात्मा हैं। यही विज्ञान के स्रोत हैं।

नारायण नारायण
सबका भला हो
नारायण

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगणेशाय नमः

विज्ञान सङ्गोष्ठी (जून २०२०)

(दिवस २)

जिन महानुभावोंने दक्षतापूर्वक सद्भावपूर्वक समयकी सीमा में अपने भावोंको व्यक्त किया है उन्होंने हमें अत्यंत प्रमुदित किया है। हमारी भावना है कि इस प्रकारके कम-से-कम 40 विश्वस्तर के वैज्ञानिक हमारे सम्पर्क में आयें और हम उनके सम्पर्क में पहुँच सकें। विश्वके कल्याणके लिये यह प्रकल्प वर्षोंसे मन में सन्निहित था लेकिन भगवत्कृपासे इस वर्ष उसके क्रियान्वित करनेका प्रकल्प सार्थक हो सका है। मैं एक संकेत करना उचित समझता हूँ कि

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।। (भगवद्गीता 2.28)

उपनिषदोंका सिद्धान्त ही भगवान् श्री कृष्णने अर्जुनके सम्मुख व्यक्त किया है। इसके आधारपर हम कह सकते हैं *Matter can neither be created nor be destroyed. किसी भी पदार्थ की आकस्मिकी उत्पत्ति नहीं होती और किसी भी पदार्थ का निरन्वय नाश नहीं होता।*

इसका अर्थ यह है कि अव्यक्तको ही व्यक्तका रूप प्रदान करते हैं हम। व्यक्त होनेके पूर्व कार्य अपने कारणमें समाहित रहता है।

साथ-ही-साथ जब हम कहते हैं कि अमुक वस्तु का नाश हो गया तब वह वस्तु अपने मौलिक स्वरूपको प्राप्त हो जाती है। नाश का अर्थ यही है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे ऋषियोंने वेदादि शास्त्रोंके आधारपर जिस सिद्धान्तको उद्भासित किया उसके आधारपर वैज्ञानिकोंने मार्ग प्रशस्त किया। अतः वेदादि शास्त्रोंका अपने अधिकारकी सीमामें विधिवत् अध्ययन और अनुशीलन बहुत ही आवश्यक है। हमारा-आपका जो शरीर है वह भी अपने आप में यन्त्र है लेकिन उपनिषदों के आधार पर इसकी संरचनाके प्रकारको जो समझ पाते हैं, क्रियान्वित होनेके प्रकारको जो समझ पाते हैं वे वैज्ञानिक जगत् में अधिक सफल हो पाते हैं।

एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है - ***अभिव्यंग की अभिव्यक्ति अभिव्यञ्जक के अधीन होती है, अभिव्यञ्जक के तारतम्य से अभिव्यंग की अभिव्यक्ति में तारतम्य होता है।*** *उदाहरण के लिये - विद्युत की अभिव्यक्ति बल्ब और बादल के अधीन होती है, बल्ब और बादल के तारतम्य से विद्युत की अभिव्यक्ति में तारतम्य होता है।* हमारा यह जो स्थूल शरीर है अपने आप में एक यन्त्र है। लेकिन शव शरीर के द्वारा व्यवहार नहीं हो पाता है। इसका अर्थ है इसके सञ्चालनके लिये हमको एक और शरीर प्राप्त है उसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं जिसमें पञ्च कर्मेन्द्रियोंका, पञ्च ज्ञानेन्द्रियोंका, पञ्च प्राणोंका, अन्तःकरण चतुष्टय या अन्तःकरण पञ्चकका योग है। सूक्ष्मशरीर से युक्त यह स्थूलशरीर व्यवहारक्षम होता है।

एक और संकेत करना मैं उचित समझता हूँ कि हमारे-आपके स्थूल शरीरके बाह्य हिस्से में पञ्चकर्मेन्द्रियोंको, पञ्चज्ञानेन्द्रियोंको व्यक्त करने के संस्थान हैं। अभ्यंतर हिस्से में प्राणोंको, अन्तःकरणको व्यक्त करनेके संस्थान हैं। मनुष्यका शरीर इसलिये विकसित माना जाता है क्योंकि इसके बाह्य हिस्सेमें पञ्चकर्मेन्द्रियोंको, पञ्चज्ञानेन्द्रियोंको व्यक्त करनेके संस्थान सन्निहित हैं। बहुतसे ऐसे प्राणी हैं जिनके स्थूलशरीरमें पञ्चकर्मेन्द्रियोंको, पञ्चज्ञानेन्द्रियोंको व्यक्त करने के पूर्ण संस्थान नहीं हैं। मनुष्य शरीर इसलिये विकसित माना जाता है कि इसके बाह्य हिस्से में पञ्चकर्मेन्द्रियों को, पञ्चज्ञानेन्द्रियोंको व्यक्त करनेके संस्थान सन्निहित हैं। अभ्यंतर हिस्सेमें प्राणोंको और अन्तःकरण चतुष्टय (जिसको मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार कहते हैं) उसको व्यक्त करनेके संस्थान सन्निहित हैं। और एक विचित्र बात है कि **जिसको लिङ्ग शरीर या सूक्ष्मशरीर कहते हैं जिसके न रहने पर यह शरीर शव गिना जाता है उस सूक्ष्मशरीरमें कारणशरीरको व्यक्त करनेकी क्षमता है। कारणशरीर सुषुप्ति या गाढ़ी नींदमें अभिव्यक्त होता है और कारणशरीर में परमात्माको जीवात्माके रूपमें व्यक्त करनेकी क्षमता है।** तो मैंने एक नियम निर्धारित किया वैज्ञानिक धरातल पर कि अभिव्यंग की अभिव्यक्ति अभिव्यञ्जक के अधीन होती है। अभिव्यञ्जक के तारतम्य से अभिव्यंग की अभिव्यक्ति में तारतम्य होता है। जैसे कि विद्युत की अभिव्यक्ति बल्ब और बादल

के अधीन है, बल्ब और बादल के तारतम्यसे विद्युत की अभिव्यक्तिमें तारतम्य होता है। इस रहस्य को जो व्यक्ति जान लेता है वह विविध यन्त्रोंकी उद्भावना कर सकता है। और यन्त्रोंमें प्रज्ञाशक्ति, प्राणशक्ति का अपेक्षित आधान भी कर सकता है। साथ-ही-साथ **सृष्टिकी संरचना का ज्ञान, सृष्टि की संरचनाके प्रकारका बोध जिसके जीवन में है वह विविध प्रकारके यन्त्रोंकी उद्भावना कर सकता है।** मैं उदाहरण देता हूँ - **कोई ऐसा यन्त्र तैयार कीजिये जो प्रेशरके द्वारा या दबाव के द्वारा 1 किलो, 2 किलो मिट्टी जो गीली हो उसके गन्ध नामक गुण को कर्षित कर ले तो मिट्टी का अंश, पृथ्वी का अंश जल के रूप में परिणत हो जायेगा। यह प्रलय की दशा है। इसके आधार पर भी बहुतसे यन्त्रों का आविष्कार हो सकता है। लेकिन उनका क्लिष्ट उपयोग न करके, अक्लिष्ट उपयोग होना चाहिये।** तो मैंने क्या संकेत किया - जिस वस्तुमें निःसर्गसिद्ध जो गुण है उसका कर्षण कर लेने पर वह वस्तु अपने कारणके रूप में शेष रह जाती है। श्रीमद्भागवत के ग्याहरवें स्कंध में इस प्रलय का वर्णन है। इसके आधारपर भी हम बहुतसे यन्त्रोंका निर्माण कर सकते हैं, किसी भी कार्य को कारण का रूप दे सकते हैं।

इसी प्रकारसे वायु के द्वारा, कल्पना कीजिये... जल में जो सन्निहित **रस** नामक गुण है उसका कर्षण कर लिया जाये तो जल

नहीं रहेगा, अग्नि के रूप में सन्निकट निर्विशेष कारण के रूपमें परिणत हो जायेगा।

फिर वायुमें वह क्षमता हो... प्रेशर डाल कर किसी यन्त्र के द्वारा हम अग्निनिष्ठ रूप नामक गुण का कर्षण कर लें तो अग्नि तत्व वायु के रूपमें परिणत हो जायेगा। इसी प्रकारसे अगर कोई ऐसी व्यवस्था हो जैसे आकाश में भगवान् कालप्रेरित वह क्षमता उत्पन्न करते हैं कि वायुनिष्ठ स्पर्श का वो ग्रहण कर ले तो आकाशके रूपमें ही वायु दृष्टिगोचर हो। यह प्रलय की गाथा है। तो अब तक मैंने कहा कि बहुत से यन्त्रों का आविष्कार इस सिद्धान्त के आधार पर हो सकता है। **जिस वस्तु में निःसर्गसिद्ध जो गुण है, अगर हम उसका कर्षण कर लेते हैं तो वह वस्तु अपने कारण के रूप शेष रहती है**। और एक विचित्र बात है... ऊपर से नीचे की ओर अवरोह क्रम की ओर हम चलें तो सृष्टिकी रचनाका हमको विज्ञान प्राप्त होता है। आकाश के बाद भगवान् वायु बनाते हैं, वायु के बाद तेज बनाते हैं, तेज के बाद जल बनाते हैं, जल के बाद पृथ्वी बनाते हैं, पृथ्वी से पार्थिवप्रपञ्च वृक्ष इत्यादि की उत्पत्ति होती है लेकिन मैं एक संकेत करता हूँ, कि हम लोगोंके लिये सुगम क्या है? हमारे पास आकाश है, आकाश व्यापक है, शून्य है, अवकाशप्रद है। हम उस आकाश को तो सुगमता पूर्वक वायु का रूप प्रदान नहीं कर सकते। तो ये उपादान-उपादेय भाव को हम निमित्त-नैमित्तिक भाव के रूप में अगर परिवर्तित कर दें तो हम भी दैनिक जीवनमें दर्शन और विज्ञान

का उपयोग बहुत उत्तम ढंग से कर सकते हैं। मैं एक संकेत करना उचित समझता हूँ कि हमारे जीवनमें दर्शन और विज्ञान घुला है रचा है पचा है, **जितने व्यवहार करनेवाले व्यक्ति हैं, मजदूर ही कोई क्यों न हो, अनपढ़ ही क्यों न हो लेकिन उसके जीवनको अगर विधिवत् निहारें तो दर्शन और विज्ञान में सामञ्जस्य साधकरके ही व्यवहार होता है**। मैंने एक उदाहरण दिया - अग्नि से जल उत्पन्न करना हमारे बस की बात सामान्य रीति से नहीं है लेकिन हम क्या करते हैं.... प्रत्येक कारण अपने कार्य को उत्पन्न करके भी उस कार्य में विद्यमान रहता है। कारण का विलोप नहीं होता, कारण की विद्यमानता रहती है। फिर सन्निकट सविशेष कार्य की उत्पत्ति हो जाती है। हम इसका नित्य ही उपयोग करते हैं। पत्थर के घिसने से, मैचबॉक्स (दियासलाई), उसके माध्यम से पार्थिव वस्तु से हम क्या कर लेते हैं - अग्नि को प्रकट कर लेते हैं। पृथ्वी को खोद करके हम जल को प्रकट कर लेते हैं। कितना बड़ा ज्ञान है! क्योंकि जल पृथ्वीमें अनुगत है तो पृथ्वी को खोद करके हम जल को उत्पन्न कर लेते हैं। पार्थिव पत्थर इत्यादि को घिस करके हम अग्नि को प्रकट कर लेते हैं। हाथ को या वस्त्र को डुला करके हम वायु को प्रकट कर लेते हैं। और पृथ्वी को जब हम खोदते हैं तो अवरोधक जो पृथ्वी है उसको हटा करके हम उसको आकाश का रूप दे देते हैं। **तो हमारे दैनिक जीवन में यह तथ्य सिद्ध है कि हम पृथ्वी से जल को भी प्राप्त कर लेते हैं। पृथ्वी से अग्नि को भी प्राप्त कर लेते हैं। पृथ्वी से हम वायु को भी**

प्राप्त कर लेते हैं और पृथ्वी के द्वारा हम आकाश को भी अभिव्यक्त कर लेते हैं। यह हमारे जीवनमें ईश्वर प्रदत्त जो क्षमता है उसको ठीक-ठीक समझ करके अगर हम उसको अधिक-से-अधिक उपयोग प्रयोग करें तो जीवन बहुत उन्नत हो सकता है।

साथ ही साथ हम... एक सेब ले लीजिये, वह तो पार्थिव है, गन्ध युक्त है। यन्त्रके द्वारा या सिलबट आदि के माध्यमसे उसको जब हम रस का रूप दे देते हैं तो मानो हमने पृथ्वी को जल का रूप दे दिया। इसी प्रकार जब हम बटलोई में रखकर जल को गर्म करते हैं तो मानो हम जल को फिर अग्नि का रूप दे रहे हैं। बहुत सा उसका अंश उष्म हो करके वाष्प के रूप में उड़ने लग जाता है। इसका मतलव उसे हम वायु का रूप भी दे देते हैं। **तो हमारे जीवन में पृथ्वी को जल के रूप में, जल को तेज के रूप में या अग्नि के रूप में, अग्नि को वायु के रूप में, वायु को आकाश के रूप में प्रकट करने की भी विधा है। लेकिन सामान्य व्यक्ति दर्शनशास्त्र से अनभिज्ञ होनेके कारण इस रहस्य को नहीं समझते।** जो व्यक्ति वैज्ञानिक धरातल पर इन सव तथ्योंको समझता है वह विविध प्रकार के यन्त्र इत्यादि का उपयोग कर सकता है लेकिन मैं एक संकेत करना उचित समझता हूँ - आखिर समय की वचत के लिये, सहयोगी की बचत के लिये, सामग्री की वचत के लिये महायन्त्रों का प्रचुर आविष्कार या प्रयोग होता है। यही विज्ञान की पहचान है। फिर से सुनिये - **महायन्त्रों**

की उपयोगिता क्या है - श्रम की बचत, समय की बचत, सहयोगी की बचत हो, सामग्री की बचत हो, यही न? लेकिन वस्तु अधिक से अधिक उत्पादित हो, कम समय में अधिक दूरी तय हो, उसका परिणाम क्या होगा - मौज-मस्तीपूर्ण जीवन हो। थोड़ा विचार कीजिये, एक कहावत है - *अंधी पीसे बिल्ली खाए* । हमने समय की बचत के लिये यन्त्रों का उपयोग किया, मोटरसाइकिल आदि का उपयोग किया। समय की वचत के लिये। पैदल चलने में कष्ट होने लगा तो यान्त्रिक विधा से हम वहुत दूर तक थोड़े समय में पहुँच सकते हैं। साथ-ही-साथ एक व्यक्ति महायन्त्रों के माध्यमसे जितना कार्य कर लेता है, 50 व्यक्ति उतना काम कई घण्टे में कर सकते हैं। सहयोगीकी बचत भी, श्रमकी बचत भी। लेकिन इन सबसे होता क्या है? थोड़ा विचार कीजिये... इस महायान्त्रिक युगमें हर व्यक्ति कहता है - 'समय नहीं है। मरने की भी फुर्सत नहीं है।' **समय को बचाने के लिये सारे प्रकल्प हमने ढूंढे, महायन्त्रों का प्रयोग किया, आविष्कार किया। लेकिन समयका ही अभाव है। विशेषकर मानव जीवनको कृतार्थ करनेके लिये समयका जैसा उपयोग होना चाहिये उसके लिये तो बिल्कुल समय नहीं है। श्रमसे बचनेके लिये हमने महायन्त्रों का उपयोग प्रारम्भ किया है लेकिन प्रत्येक व्यक्ति यही कहता है 'थका मांदा हूँ'। काम कुछ नहीं, श्रम कुछ नहीं, नहीं के बराबर। महायन्त्रोंके माध्यम से काम करते हैं श्रम की बचत के लिये लेकिन प्रत्येक व्यक्ति अपने-आपको थका-मांदा अनुभव**

करता है। साथ-ही-साथ क्या कहूँ - कोई सहयोगी नहीं है। सहयोगी की बचत के लिये महायन्त्रों का उपयोग करते हैं, हर संस्था, हर परिवार में, हर व्यक्ति की यही शिकायत होती है कि सहयोगी नहीं है। साथ ही साथ अधिक-से-अधिक वस्तुके उत्पादनकी भावनासे हम महायन्त्रोंका उपयोग करते हैं। क्या करें...सामग्रीकी न्यूनता है। इसका अर्थ क्या हुआ? मौज-मस्ती पूर्ण जीवन भी महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग करके हमको प्राप्त नहीं है। हर व्यक्ति तनावग्रस्त है, अशान्त है, दुःखका अनुभव कर रहा है। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ यह हुआ कि जिस प्रयोजनकी सिद्धिके लिये महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग हमने किया उस प्रयोजनकी सिद्धि बिल्कुल नहीं हो रही है। तो मैं एक संकेत करता हूँ - हमने मान्य वैज्ञानिकोंका मनोभाव सुना, बहुत अच्छा लगा लेकिन एक उदाहरण इस सम्बन्धमें देना उचित समझता हूँ, सावधान! गन्तव्यका ज्ञान हो तब गन्ता अपनी गतिको गन्तव्य के अभिमुख करता है, अनुकूल करता है। उस गतिके माध्यमसे गन्ता गन्तव्य तक पहुँचता है। विज्ञानका लक्ष्य तो विश्वस्तरपर निर्धारित होना चाहिये न। कल भी मैंने संकेत किया था.. लक्ष्य विहीन जो गति है उसका पर्यवसान किसमें होगा? सृष्टि संरचनाका जो प्रयोजन है और हमारे जीवनमें मानव जीवन जो विशेषकर हमको प्राप्त है उसका जो उद्देश्य है, प्राणी मात्रकी प्रवृत्ति और निवृत्ति का जो नियामक है उसको समझे बिना हम विज्ञानको

दिशा क्या देंगे? विज्ञानका उपयोग तो हम कर सकते हैं महायन्त्रोंके माध्यमसे लेकिन लक्ष्यविहीनताके कारण हमारे जीवनमें अशान्ति बढ़ेगी। इसलिये विज्ञानको दिशाहीन होनेसे बचानेके लिये सृष्टिकी संरचना का प्रयोजन क्या है और हम अपने जीवनको सार्थक कैसे कर सकते हैं इसका निर्धारण पहले होना चाहिये तो हम सही दिशा विज्ञानको दे सकते हैं।

श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के 87वें अध्याय के दूसरे श्लोकके माध्यमसे सृष्टि की संरचना के प्रयोजनका वर्णन किया गया है -

बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ॥

भगवान् ने महासर्ग के आरम्भ में आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी से मण्डित सृष्टिकी संरचना की। जीवोंके अभुक्त कर्मोंको फलोन्मुख करनेकी भावनासे उन्होंने जीवों को देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण से युक्त जीवन प्रदान किया। विशेषकर मनुष्योंको यह संकेत किया कि इसके माध्यमसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष संज्ञक पुरुषार्थ चतुष्टयकी सिद्धि आप कर सकें। '*मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च*'।

पुरुषार्थ चतुष्टयकी सिद्धि संसारकी संरचना का लक्ष्य है। अन्तिम लक्ष्य क्या है - मोक्ष की प्राप्ति- जन्म और मृत्यु की अनादि-अजस्र परम्परा का आत्यन्तिक उच्छेद। साथ-ही-साथ मैंने कल यह भी संकेत किया था - ***असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय***। *हे प्रभु! मेरे जीवन में उस बल और वेग का आधान कर दो, जो कुछ नश्वर है, मृत्युग्रस्त है, असत् है, उससे पिण्ड छुड़ाकरके मैं सद्रूप, मृत्युञ्जय, अमृतस्वरूप होकर शेष रह सकूँ। जो कुछ अचित् है, अज्ञान है, अबोध है, नासमझी है, मूर्खता है उससे पिण्ड छुड़ा कर चिद्रूप होकर, अखण्ड विज्ञानस्वरूप होकर शेष रह सकूँ। जो कुछ ताप है, वेदना है, कष्ट है उससे मुक्त होकर अखण्ड आनन्दस्वरूप होकर मैं शेष रह सकूँ।* और हमारे जीवनमें इस प्रकारकी भावनाको साकार रूप दिया जाता है, इस पर भी ध्यान केन्द्रित करना आवश्यक है।

सावधान! हमको-आपको भगवत्कृपा से गाढ़ी नींद की प्राप्ति होती है। कम्युनिज़्म की थ्योरी / कम्युनिज़्म का सिद्धान्त यहीं पर जाकर विफल हो जाता है। देहात्मवादी जितने हैं उनकी मान्यता पर गाढ़ी नींदका वेग ही पानी फेर देता है। क्योंकि चेतनाविशिष्ट शरीर को ही जो लोग आत्मा मानते हैं, अगर शरीरको भुलाया न जाये, शरीरका विस्मरण न हो तो फिर गाढ़ी नींदकी प्राप्ति ही न हो। और गाढ़ी नींदकी प्राप्ति न हो तो दो-चार दिनों में विक्षिप्त या पागल होनेके लक्षण प्रकट होने लगें। देहात्मवाद पर तो गाढ़ी नींदका वेग ही पानी

फेर देता है। वह सिद्धान्त हमारा उत्कर्ष कैसे कर सकता है जो गाढ़ी नींदके वेग को भी सह नहीं सकता? जितने भौतिकवादी हैं विषय-इन्द्रिय के सहयोग से सुलभ जो प्रिय, मोद, प्रमोद, आनन्द है उसीके रसिक होते हैं। लेकिन पञ्चदशीकार विद्यारण्य स्वामी जी ने दार्शनिक और वैज्ञानिक विधा से इस तथ्य को स्थापित किया - *विषयानन्द के द्वारा ही अगर हमारा जीवन कृतार्थ होता हो तो विचार करना चाहिये कि प्रिय वस्तुके दर्शनसे प्राप्त प्रिय, और प्रिय वस्तु के संस्मरण से प्राप्त मोद, प्रिय वस्तु या व्यक्ति के यथेच्छ सेवनसे प्राप्त प्रमोद जिसके जीवन में उच्छलित है, प्रिय के स्थान पर प्रिय, मोद के स्थान पर मोद और प्रमोद के स्थान पर प्रमोद जिसके जीवन में उच्छलित है वह आखिर विषयजन्य आनन्दको भुलाकर क्यों सोना चाहता है?* अगर विषयानन्द जिसके जीवनमें भरपूर है... यहाँ तक कि ब्रह्माजी का वर्णन आया है कि मर्त्यलोककी अपेक्षा ब्रह्माजी को कितना आनन्द प्राप्त है, उसका वर्णन तैत्तिरीय उपनिषद् में विस्तारपूर्वक किया गया है - एक सहस्र परार्ध गुण अधिक आनन्द मर्त्यलोक की अपेक्षा ब्रह्माजी को प्रतिक्षण प्राप्त है क्योंकि उनका श्रीविग्रह इतना दिव्य है लेकिन उन ब्रह्माजी को भी नींद की आवश्यकता होती है। इसका अर्थ यह है जहाँ विषयजन्य आनन्द होता है वहाँ त्रिपुटी होती है। भोग्य पदार्थ, भोग और भोक्ता। कल्पना कीजिये गुलाबके पुष्पको देखकर मुझे आनन्द मिल रहा है तो गुलाबका पुष्प हो गया भोग्य और आनन्दकी अनुभूति हो गयी

भोग, और हम हो गये भोक्ता। जहाँ विषयजन्य आनन्द होता है वहाँ त्रिपुटी होती है। और जहाँ त्रिपुटी होती है वहाँ श्रम होता है, और जहाँ श्रम होता है वहाँ पूर्ण आनन्द नहीं होता।

सपनेहुँ नहीं सुख द्वैत - दरसन, बात कोटिक को कहै...

इसका अर्थ क्या हुआ? विषयजन्य आनन्द ही जीवनको सार्थक नहीं कर सकता। एक संकेत और करता हूँ - प्रमाणिक रीति से विचार करने पर वैदिक-अवैदिक, भौतिक-अभौतिकवादी जितने हैं, आखिर जगत् का प्रमाणिक रीति से निरीक्षण परीक्षण करेंगे तो किस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे -

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः।।
(भगवद्गीता 5.19)

सदोष और विषम का नाम ही जगत् है। फिर से सुनिये - **लाखों वैज्ञानिक विचार करें लाखों वर्षों तक, जगत् की यही मीमांसा होगी - जो सदोष है, विषम है उसीका नाम सृष्टि है उसीका नाम जगत् है। और जो निर्दोष और सम है उसीका नाम परमात्मा है / आत्मा है।** इसका अर्थ ये है जो भी सदोष और विषम है उसका आलम्बन लेकर हम सदोष और विषम का अतिक्रमण कर सकते हैं। सृष्टिकी संरचनाकी उपयोगिता पर विचार करें - भगवत्पाद

आदि शङ्कराचार्य महाभागके पूज्य गुरुदेव गोविन्दपादाचार्य जी के भी पूज्य गुरुदेव गौडपादाचार्य महाभाग ने माण्डूक्यकारिका में एक तथ्य उद्भासित किया - ***उपायः सोवताराय ...*** यह सृष्टि जो बनाई गई भगवान् के द्वारा स्रष्टा परमात्मा जो कि प्रत्यगात्मस्वरूप ही हैं उस तक पहुँचने के लिये। आपको कुछ मुस्कान का अनुभव होगा, सबसे कठिन पहेली यही है कि हम अपने तक पहुँचें। सबसे कठिन पहेली क्या है? गन्ता ही अगर गम्य हो जाये तो गति की आवश्यकता नहीं होगी न? लेकिन सबसे अधिक कठिन बात यह है कि हम अपने तक पहुँचें। लेकिन अपने तक तो हर व्यक्ति पहुँचा होता ही है, फिर क्या यह पहेली है? वस्तुस्थिति यह है कि **हम जहाँ हैं हमारा जो वास्तविक स्वरूप है, उससे अहंता, ममता के कारण सुदूर हो गये हैं।** तो सृष्टिकी उपयोगिताका वर्णन माण्डूक्यकारिका के माध्यमसे गौडपादाचार्य महाभागने किया - ***उपायः सोवताराय*** ...भगवत्स्वरूप, आत्मस्वरूप, सच्चिदानन्दस्वरूप होकर शेष रहें इसके लिये आवश्यक है कि भगवान् सृष्टि की संरचना करें। देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण हमको प्राप्त न हो, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश की रचना न हो तो इनका आलम्बन लेकर हम अपने तक पहुँच नहीं सकते। हम ऊपर जाना चाहते हैं तो चढ़ने के प्रत्येक पायदान का आलम्बन लेकर... **जिसका अतिक्रमण करना चाहते हैं उसीका आलम्बन हमको लेना पड़ेगा। उससे क्या होगा - जीवनमें उसके त्यागका बल और वेग प्राप्त होगा, आगे बढ़नेका बल और**

वेग प्राप्त होगा। जगत् का आलम्बन लेकर हम जीवनधन जगदीश्वर तक, आत्मा तक पहुँच सकें, जन्म और मृत्यु की अनादि अजस्र परम्पराका आत्यन्तिक उच्छेद हो सके, इसलिये भगवान् ने सृष्टि की संरचना की है।

अधिक समय न लेकर न देकर मैं एक संकेत करता हूँ - आधुनिक समयमें महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग होनेके कारण सबसे अधिक आघात क्या पहुँचा है? मैं समझता हूँ इस पर पूरे विश्वमें जो दृश्य कोटिके जीव हैं... एक महानुभावने कहा कि अदृश्य कोटिके भी मानव होते हैं सिद्धिके बल पर योगके बल पर.... तो दृश्य कोटिके जो मनुष्य हैं उनका ध्यान इधर नहीं जा रहा है कि **सबसे अधिक महायन्त्रोंके प्रचुर आविष्कार और प्रयोगका दुष्प्रभाव क्या पड़ा है - वातावरण कलुषित हुआ है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये सब के सब क्षुब्ध हो गये हैं, कुपित हो गये हैं जिसके प्रभाव से यह (कोरोना) रोग भी हमको प्राप्त है लेकिन उससे भी अधिक भयङ्कर घाटी हमको यह प्राप्त है कि धृति का लोप।** नारदपरिव्राजक उपनिषद् में और मनुस्मृति में एक ही मन्त्र का प्रयोग है... नारद परिव्राजक उपनिषद् का मन्त्र ही मनुस्मृति में भगवान् मनु ने समुद्धृत किया - ***धृतिः क्षमा*.....** धर्म का पहला लक्षण है धृति यानि धैर्य। अब थोड़ा विचार कीजिये, हम हों या आप, सिरहाने के पास ही जल चाहिये, पाँव के पास ही नहाने, मलत्याग

आदि करने की व्यवस्था चाहिये। इसका मतलब? ध्यानपूर्वक सुनिये, मैं भी थोड़ा धीरे बोल रहा हूँ ताकि बात सर से ना उठ जाये - मानवजीवन की अपूर्वता, **जिस प्रयोजनकी सिद्धि अन्य शरीरोंसे असम्भव सदृश है, उस प्रयोजनकी सिद्धि मनुष्य शरीरसे सम्भव है। मानवजीवन की अपूर्वता पर ही हमने विविध आविष्कारोंके माध्यमसे, यन्त्रोंके माध्यमसे हमने पानी फेर दिया है।** इसका अर्थ क्या है? **पञ्चदशीकार विद्यारण्य स्वामीजी ने एक भाव व्यक्त किया - सबसे अधिक धैर्य की पराकाष्ठा चाहिए कैवल्य मोक्ष के लिये। एक क्षण के लिये थोड़ा विचार कीजिये - केवल हमारा जो तात्विक स्वरूप है वही रह जाये। अहम् अस्मि (मैं हूँ) इस प्रकार की कलना भी न उठे।** गाढ़ी नींद में हमको मृत्यु का भय प्राप्त नहीं होता। दैहिक, दैविक, भौतिक त्रिविध तापों में किसी ताप की प्राप्ति और व्याप्ति नहीं होती; शीत, उष्ण आदि किसी प्रकार के द्वंद्व की प्राप्ति नहीं होती। काम, क्रोधादि मनोविकारों से भी अतिक्रांत हमें जीवन प्राप्त होता है। जब गाढ़ी नींद में भी अहम् अस्मि (मैं हूँ)इस प्रकार की अनुभूति की गति नहीं है तो उस अज्ञान रूप बीज को भी दग्ध करने के बाद और शरीरपात के बाद जो स्थिति होगी, जैसा सच्चिदानन्द हमारा तात्विक स्वरूप है, सन् मात्र होकर, चिन् मात्र होकर, आनन्द मात्र होकर सदा के लिये हम शेष रहें।

मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः (श्रीमद्भागवत 2.10.6), इस ज्ञान की सहिष्णुता के लिये कितना धैर्य चाहिए?

उतना धैर्य तो आजकल सम्भव ही नहीं है। भगवत्कृपासे किसीमें आ जाये तो बहुत ऊँची बात है। प्रारब्धके प्रभावसे योगभ्रष्टके जीवनमें ऐसी क्षमता हो सकती है। इससे नीचे उतरिये - सायुज्य मोक्ष, सारूप्य मोक्ष, सामीप्य मोक्ष, इन सबको प्राप्त करनेके लिये भी जितना बल और वेग, त्याग, संयम चाहिये, युक्त आहार-विहार चाहिये, आजकल सम्भव नहीं है। उसको भी छोड़िये - ***क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति***। (भगवद्गीता 9.21)

स्वर्ग... देहत्याग के बाद स्वर्गकी प्राप्तिके लिये जितना संयम चाहिये, त्याग चाहिये, वह क्षमता भी हमारी लुप्त हो गयी। इसको भी छोड़िये... वृद्धावस्था में हम सुखपूर्वक रह सकें इसलिये आरम्भ से जो संयम चाहिये वह भी नहीं। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ यह हुआ कि **सुविधाके नामपर महायन्त्रों का प्रचुर आविष्कार और प्रयोग करनेके कारण मानवजीवन की अपूर्वता पर ही हमने पानी फेर दिया है। इसका अर्थ हमारा जीवन न भोगके अनुकूल रह गया है, न मोक्षके अनुकूल रह गया है।**

और भी मैं एक संकेत करना चाहता हूँ - पृथ्वी के धारक जितने तत्व हैं, इस विकासके व्यामोह में, महायन्त्रोंके प्रचुर आविष्कार और प्रयोगके व्यामोह में आकर सबके सब विलुप्त हो रहे हैं। वाल्मीकि रामायण का मैं एक उदाहरण देता हूँ - हनुमान जी ने अपने रुद्र अंश का स्मरण करके क्या किया? लंकाका दाह कर

दिया। बहुत अच्छी बात लेकिन विचार यह किया - अशोकवाटिका तो कहीं नहीं जल गई! अगर अशोक वाटिका जल गई तो अशोक वृक्ष के नीचे जो सीता जी बैठी थीं वो भी तो नहीं जल गई? अगर ऐसा ही हुआ तो मैं बुद्धिमान कैसे सिद्ध हुआ? हनुमान जी ने विचार किया कि मेरे आनेका उद्देश्य तो भगवती सीताका सन्देश भगवान् रामभद्र को देना लेकिन मेरे पराक्रमके फलस्वरूप कदाचित् अशोकवाटिका ही जल गई, अशोक वृक्ष ही जल गया, सीता जी ही जल गईं तब तो मुझ जैसा दुर्गति प्राप्त व्यक्ति कौन होगा? इसी प्रकार विचार करना चाहिये - *अञ्जन कहां आँख जेई फूटे...* मानव जीवन की अपूर्वता, कृतार्थता, जो कुछ सदोष और विषम है उनसे पारङ्गत होकर सच्चिदानन्दस्वरूप मात्र होकर शेष रहना, जन्म और मृत्यु की अनादि-अजस्र परम्पराका आत्यन्तिक उच्छेद करना, इसीपर हमने सुविधाके नाम पर पानी फेर दिया है। किसीके जीवनमें वह क्षमता प्रायः नहीं रह गई है कि धर्मके मार्गपर मोक्षके मार्गपर, यहाँ तक कि परोपकारके मार्गपर भी चल सके। तो मानवजीवन की अपूर्वतापर पानी फेरने के लिये तो महायन्त्रोंका प्रयोग हमने किया है। इसलिये जीवन का जो लक्ष्य है उसकी सिद्धि के लिये, सृष्टिकी संरचनाका जो प्रयोजन है उसकी सिद्धिके लिये यन्त्र आदि का उपयोग होना चाहिये।

मनु जी ने एक अद्भुत तथ्य उद्भासित किया - ***महायन्त्र प्रवर्तनं***... (मनुस्मृति 11.63)। इसपर अनुसंधान होना चाहिये। लाखों वर्ष पहले मनुजी ने चेतावनी दी। एक सिद्धान्त है विज्ञान का कि *अप्राप्त का प्रतिषेध नहीं होता*। अगर मनु इत्यादि महर्षि महायन्त्रोंको बनानेमें समर्थ न होते तो महायन्त्रके प्रवर्तनपर प्रतिबंध रहना चाहिये, महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग नहीं होना चाहिये, यह तथ्य प्रकाशित क्यों करते? तो मनुजीने क्या संकेत किया - **महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग होगा तो आर्थिक विपन्नता, अनावश्यक विषमता होगी ही। एक व्यक्ति महायन्त्रके माध्यमसे उतना काम कर लेगा जिसके फलस्वरूप एक हज़ार व्यक्ति बेरोज़गार हो जायेंगे। आर्थिक विपन्नता, अनावश्यक विषमता पालनी हो तो महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग कीजिये। महामारीको लानेकी भावना हो तो महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग कीजिये। पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवन ऊर्जाके जितने स्रोत हैं, उनको मलिन, विकृत, अत्यंत कुपित, क्षुब्ध करने, प्रलयङ्कर बनानेकी भावना हो तो महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग कीजिये। विश्वयुद्धकी भावना हो तो महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग कीजिये। मानवजीवनके लक्ष्यको दिशाहीन करनेकी भावना हो तो महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग कीजिये। स्थावर और जङ्गम प्राणियोंकी**

प्रजातियोंको विलुप्त करनेकी भावना हो तो महायन्त्रोंका प्रचुर आविष्कार और प्रयोग कीजिये।

एक महानुभाव ने कहा - यह जो संकट (कोरोना) आया है यह दूर हो जाये उसके बाद... संकट दूर कैसे होगा, मैं समय आने पर बताऊँगा लेकिन मैं संकेत करना चाहता हूँ - कल्पना कीजिये संकट दूर हो गया, इस संकट ने कुछ उपहार दिया है या नहीं? इस समय ऋतुके अनुसार जो वृक्षोंमें पुष्प लगे हैं उनके रङ्ग कितने अच्छे हैं- क्योंकि दूषित वातावरणके कारण वो अपने वास्तविक स्वरूपसे प्रकट नहीं होते थे। गङ्गा, यमुना आदि निर्मलता की ओर जा रही हैं। बहुत सी प्रजातियाँ पक्षियोंकी दिखाई नहीं पड़ती थीं, उनके स्वर सुनाई नहीं पड़ते थे, वे दिखाई, सुनाई पड़ने लगे लेकिन मान लीजिये यह विभीषिका चली गयी तो फिर वही महायन्त्र, वही सब... इसलिये अभी विचार करनेकी आवश्यकता है कि प्रकृति जिस व्यवस्थाको सह सकती है उसी ढंग से उस उद्योग को, लघु उद्योग को, कुटीर उद्योग को, शिक्षा, रक्षा, कृषि, गोरक्ष्य, वाणिज्य, सेवा के प्रकल्प को, जिसे प्रकृति सह सकती है उस पर अनुसंधान करके वस्तुतः भारत को तो कम से कम उसी ढंग से ढालने का प्रयास करना चाहिये। तो हमने संकेत किया, हमारा-आपका जीवन भी ***जानाति***, ***इच्छति***, ***करोति***, इन तीन शक्तियों से सम्पन्न है। हमारे जीवनमें विज्ञानमय कोष के माध्यमसे हम जानते हैं, मनोमय कोष

के माध्यमसे इच्छाशक्ति हमारे जीवन में है, प्राणमय कोष के माध्यमसे क्रिया शक्तिजीवन में है। तीनों का अभिव्यञ्जक संस्थान स्थूल शरीर है। और जीव जो है इन सब का सञ्चालक है। हम अपने जीवन का विधिवत् अध्ययन कर लें तो विविध प्रकार के महायन्त्रों का आविष्कार भी हो सकता है, प्रयोग भी हो सकता है।

नारायण!
सबका भला हो।

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीगणेशाय नमः

विज्ञान सङ्गोष्ठी (जून २०२०)

(दिवस ३)

मुझे बहुत ही प्रसन्नता है कि मान्यश्री वैज्ञानिक महानुभावोंने अद्भुत आस्था और अपनत्वपूर्वक अपने भावोंको ललित शब्दोंमें प्रस्तुत किया है। परसों मैं एक महानुभावके मुखारविन्दसे कृषि विज्ञान पर वक्तव्य सुन रहा था। वे नित्य ही प्रवचनमें सम्मिलित हो रहे हैं, मुझे प्रसन्नता है। मैं एक संकेत करना चाहता हूँ - ***फलावसानं जगत्..*** भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य महाभागने छान्दोग्य श्रुतिके भाष्यमें इस तथ्यको उद्भासित किया है कि फल में पर्यवसान होता है जगत् का। जैसे हम वृक्ष लगाते हैं, आम का पौधा लगाया तो परिणाममें आम की प्राप्ति होनी चाहिए। ***फलावसानं जगत्..*** एक दृष्टिकोण यह है कि भगवान् अपनी माया शक्ति या प्रकृति के योग से आकाश को उत्पन्न करते हैं, फिर वायु को उत्पन्न करते हैं, फिर अग्नि या तेज को उत्पन्न करते हैं, फिर तेज के बाद जल को उत्पन्न करते हैं, जल के बाद पृथ्वी को उत्पन्न करते हैं। कल मैंने संकेत किया था मूल कारण वही हो सकता है जो निर्विशेषताकी अवधि हो। और अन्तिम कार्य वही हो सकता है जो सविशेषताकी अवधि हो। पृथ्वी अन्तिम कार्य क्यों है? इसका उत्तर यही हो सकता है कि

पृथ्वी अपनेसे अधिक विशेषता वाली किसी वस्तुको उत्पन्न नहीं करती। **कहीं ना कहीं जाकर कार्य का विराम होना चाहिए। अगर विरामरहित कार्य हुआ तो न वह विज्ञान सिद्ध होगा, न दर्शन सिद्ध होगा, न व्यवहारका सम्पादन उससे हो सकेगा। हम गतिशील होते हैं तो गति का समापन गंतव्य तक पहुँचने पर होता है।** पृथ्वी अन्तिम कार्य है क्योंकि पृथ्वीमें जो पाँच गुण हैं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध उससे अधिक विशेषता वाली कोई वस्तु उससे उत्पन्न नहीं होती है। वृक्षादि जो हैं, पृथ्वीके तारतम्यक सङ्घात हैं। पृथ्वीसे अतिरिक्त कोई तत्व या कार्य नहीं है। इसी प्रकार गणितकी दृष्टिसे विचार करने पर पृथ्वीका कारण जल ही हो सकता है क्योंकि वह सन्निकट निर्विशेष है। पृथ्वी में पाँच गुण हैं तो जल में चार ही गुण होते हैं।

जल का कारण अग्नि या तेज ही हो सकता है क्योंकि जल की अपेक्षा तेज सन्निकट निर्विशेष है।

तेज में शब्द, स्पर्श, रूप तीन ही गुण होते हैं।

तेज या अग्नि का कारण वायुतत्व ही हो सकता है क्योंकि सन्निकट निर्विशेष तेज के वायुतत्व ही है। वायु में केवल शब्द और स्पर्श दो गुण होते हैं।

वायु का कारण आकाश ही हो सकता है क्योंकि वायु के सन्निकट निर्विशेष आकाश को ही हम मान सकते हैं। आकाश में केवल एक गुण होता है, शब्द।

अब गणितकी दृष्टिसे मैंने संकेत किया कि आकाश का कारण कौन हो सकता है? या तो 1-1=0, जिसमें कोई गुण न हो, निर्विशेषता की अवधि हो वही आकाश का कारण हो सकता है। उसी को हमारे यहाँ ... **निर्विशेषता की, निर्गुणता की अवधि का नाम है आत्मा, वह चेतन है।**

दूसरी प्रक्रिया कृषि विज्ञानके आधार पर है उसको भी मैंने प्रस्तुत किया। और दोनोंमें सामञ्जस्य भी हमने अपने ग्रन्थों में साधा है। जैसे अङ्कुर इत्यादिका पर्यवसान बीज में हो जाता है। ठीक उसी प्रकारसे आकाश का उद्गम स्थान वह है जिसमें शब्दकी बीजावस्था है, जिसका नाम हम अव्यक्त कहते हैं।

आगे हम संकेत करते हैं.... **बीज से... चना का, जौ का, मटर का मान लीजिये, बीज है, उससे अङ्कुर उत्पन्न करनेकी क्षमता हम लुप्त कर दें, चाहे चने को भूनकरके या घुन के माध्यमसे उस अङ्कुरोत्पादिनी शक्तिका अपहरण कर लें तो चने का बीज बीज नहीं कहा जायेगा, वह पृथ्वीके रूप में (अपने उपादान) के रूप में परिणत हो जायेगा। इसी प्रकार जगत् को, आकाशादि को उत्पन्न करने की क्षमता से विरहित जो अव्यक्त है, नेचर है या प्रकृति उसी का नाम हमारे यहाँ आत्मा है। तो मैंने कहा निर्विशेषता की अवधि ही मूल कारण है और सविशेषता की अवधि ही अन्तिम कार्य है।** इस बीच

में - **सन्निकट सविशेष का नाम कार्य है, सन्निकट निर्विशेष का नाम कारण है**। इस परिभाषा को क्रियान्वित करनेकी आवश्यकता है। कुल सात पदार्थोंमें ही सम्पूर्ण पदार्थोंका अन्तर्भाव जाता है। इसके बाहर कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होते। कृषि विज्ञानकी दृष्टि से मैंने इस विषयको उठाया।

एक नियम है कि कोई भी कारण अपने सन्निकट सविशेष कार्य को उत्पन्न करके अपना अस्तित्व लुप्त नहीं करता, विद्यमान ही रहता है। इसको समझनेकी आवश्यकता है। **जैसे मिट्टीसे घट उत्पन्न होता है लेकिन मिट्टीका विलोप नहीं होता। इस दृष्टि से विचार करें तो प्रत्येक कार्य में कारण की विद्यमानता होती है। पृथ्वी चरम कार्य है, अन्तिम कार्य है, विशेषता की अवधि है। तो पृथ्वी में जल भी सन्निहित है, तेज भी सन्निहित है, वायु भी सन्निहित है, आकाश भी सन्निहित है, अव्यक्त /प्रकृति या नेचर भी सन्निहित है, और आत्मतत्व भी सन्निहित है। पृथ्वी विशेषताकी अवधि है।** अब कृषि विज्ञानको उन्नत करने के लिए एक बहुत आवश्यक तथ्य है, श्रीमद्भागवत के चौथे स्कन्ध में पृथुजी का उपाख्यान है, इतिहास है जिसमें उन्होंने पृथ्वीको गायके रूप में प्रस्तुत देखा। पृथ्वीका आधिदैविक स्वरूप ही हमारे पुराणों में, वेदों में गाय है। भूसूक्तम् के माध्यमसे भी यह तथ्य सिद्ध है और पाश्चात्य जगत् के वैज्ञानिक ने भी पहले पृथ्वी के केन्द्रका अनुसन्धान किया, बाद में जब उसने

कहा कि उसकी आकृति एक गाय जैसी है तो उपहासका पात्र बना। लेकिन हम लोगों ने जब समर्थन किया कि ठीक, हमारे यहाँ पृथ्वी का आधिदैविक रूप गाय माना गया है। पृथु जी के आख्यान में पृथ्वी गाय के रूप में प्रस्तुत थी। पात्र भेद से और दोग्धा के भेद से गाय के दोहने पर विशेष प्रकार के अन्न की उत्पत्ति हुई। सत्रह प्रकारके अन्न का वर्णन महाभारत में है। अन्न के जितने प्रभेद हैं उनको मुख्य रूप से 17 में हम सन्निहित कर सकते हैं। चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड में जितने प्राणी हैं, निःसर्गसिद्ध उनका जो आहार अन्न है, उसकी उत्पत्ति का उद्गमस्थान पृथ्वी है, इस रहस्य को अगर कोई जान जाये तो कृषि विज्ञान में लोकोत्तर चमत्कृति हो सकती है। कृषि दर्शन नामक एक ग्रन्थ हमने लिखना प्रारम्भ किया था। एक सौ से अधिक पृष्ठ हो जाने पर फिर धारा कहीं गणित की ओर चल पड़ी। संयोग लगने पर 400-500 पृष्ठों में कृषि दर्शन ग्रन्थ पूरा हो सकता है। तो हमने अब तक यह कहा कि अन्न का स्वरूप पहले समझना चाहिये। एक बहुत दिव्य विज्ञान से सम्पन्न पृथु जी का चरित्र है जिन्होंने 17 प्रकार के अन्न पृथ्वी से प्राप्त किये। **आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि नृत्य का नाम भी अन्न है, गान का नाम भी अन्न है, सौन्दर्य का नाम भी अन्न है, सिद्धियों का नाम भी अन्न है। अन्न की बृहत् परिभाषा पृथु जी के चरित्र से हमको प्राप्त होती है।**

में - **सन्निकट सविशेष का नाम कार्य है, सन्निकट निर्विशेष का नाम कारण है।** इस परिभाषा को क्रियान्वित करनेकी आवश्यकता है। कुल सात पदार्थोंमें ही सम्पूर्ण पदार्थोंका अन्तर्भाव जाता है। इसके बाहर कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होते। कृषि विज्ञानकी दृष्टि से मैंने इस विषयको उठाया।

एक नियम है कि कोई भी कारण अपने सन्निकट सविशेष कार्य को उत्पन्न करके अपना अस्तित्व लुप्त नहीं करता, विद्यमान ही रहता है। इसको समझनेकी आवश्यकता है। **जैसे मिट्टीसे घट उत्पन्न होता है लेकिन मिट्टीका विलोप नहीं होता। इस दृष्टि से विचार करें तो प्रत्येक कार्य में कारण की विद्यमानता होती है। पृथ्वी चरम कार्य है, अन्तिम कार्य है, विशेषता की अवधि है। तो पृथ्वी में जल भी सन्निहित है, तेज भी सन्निहित है, वायु भी सन्निहित है, आकाश भी सन्निहित है, अव्यक्त /प्रकृति या नेचर भी सन्निहित है, और आत्मतत्व भी सन्निहित है। पृथ्वी विशेषताकी अवधि है।** अब कृषि विज्ञानको उन्नत करने के लिए एक बहुत आवश्यक तथ्य है, श्रीमद्भागवत के चौथे स्कन्ध में पृथुजी का उपाख्यान है, इतिहास है जिसमें उन्होंने पृथ्वीको गायके रूप में प्रस्तुत देखा। पृथ्वीका आधिदैविक स्वरूप ही हमारे पुराणों में, वेदों में गाय है। भूसूक्तम् के माध्यमसे भी यह तथ्य सिद्ध है और पाश्चात्य जगत् के वैज्ञानिक ने भी पहले पृथ्वी के केन्द्रका अनुसन्धान किया, बाद में जब उसने

कहा कि उसकी आकृति एक गाय जैसी है तो उपहासका पात्र बना। लेकिन हम लोगों ने जब समर्थन किया कि ठीक, हमारे यहाँ पृथ्वी का आधिदैविक रूप गाय माना गया है। पृथु जी के आख्यान में पृथ्वी गाय के रूप में प्रस्तुत थी। पात्र भेद से और दोग्धा के भेद से गाय के दोहने पर विशेष प्रकार के अन्न की उत्पत्ति हुई। सत्रह प्रकारके अन्न का वर्णन महाभारत में है। अन्न के जितने प्रभेद हैं उनको मुख्य रूप से 17 में हम सन्निहित कर सकते हैं। चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड में जितने प्राणी हैं, निःसर्गसिद्ध उनका जो आहार अन्न है, उसकी उत्पत्ति का उद्गमस्थान पृथ्वी है, इस रहस्य को अगर कोई जान जाये तो कृषि विज्ञान में लोकोत्तर चमत्कृति हो सकती है। कृषि दर्शन नामक एक ग्रन्थ हमने लिखना प्रारम्भ किया था। एक सौ से अधिक पृष्ठ हो जाने पर फिर धारा कहीं गणित की ओर चल पड़ी। संयोग लगने पर 400-500 पृष्ठों में कृषि दर्शन ग्रन्थ पूरा हो सकता है। तो हमने अब तक यह कहा कि अन्न का स्वरूप पहले समझना चाहिये। एक बहुत दिव्य विज्ञान से सम्पन्न पृथु जी का चरित्र है जिन्होंने 17 प्रकार के अन्न पृथ्वी से प्राप्त किये। **आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि नृत्य का नाम भी अन्न है, गान का नाम भी अन्न है, सौन्दर्य का नाम भी अन्न है, सिद्धियों का नाम भी अन्न है। अन्न की बृहत् परिभाषा पृथु जी के चरित्र से हमको प्राप्त होती है।**

अब थोड़ा विचार कीजिये, पृथ्वीमें आकाश भी सन्निहित है पञ्चीकरणकी प्रक्रियाके अनुसार, या कारण की अनुगति कार्य में होती है इस सिद्धान्त के अनुसार। तो आकाश से शब्द की निष्पत्ति होती है। जो भी गायक होते हैं, विचार करके देखें तो, गान भी एक प्रकार से अन्न है। **क्योंकि शब्द भी अन्न है, स्पर्श भी अन्न है, रूप भी अन्न है, रस भी अन्न है, गन्ध भी अन्न है।** इसीलिये जीव का भोग्य आकाश भी है, वायु भी है, जल भी है, तेज भी है, पृथ्वी भी है।

सौन्दर्य की प्राप्ति होती है तेज के द्वारा, सूर्य के द्वारा, चन्द्रमा के द्वारा, अग्नि के द्वारा। सौन्दर्य की प्राप्ति भी अन्न है। इसी प्रकार ***जीवो जीवस्य जीवनं***, श्रीमद्भागवत में कहा गया प्रथम स्कंध में कि जीव जीव के आहार हैं। तो विस्तृत.. बहुत से ऐसे जीव हैं जो जीवों को खा करके, जीवों के शरीर के द्वारा ही परिपुष्ट होते हैं। लेकिन विविध प्रकार के अन्न का जो वर्णन किया गया उसमें संगीत भी है, नृत्य भी है... आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि **जो ऋषि-मुनि होते हैं उनके अन्न के रूप में वेद का वर्णन किया गया है। वेद भी अन्न है।** और हमारे जीवन में उसके पात्र कौन हैं - इन्द्रिय, मन और बुद्धि। ***इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।*** (भगवद्गीता 3.40)। काम के निवासस्थान, क्रोध के निवासस्थान जिसप्रकार इन्द्रिय, मन, बुद्धि हैं उसी प्रकार वेद के निवास स्थान भी इन्द्रिय, मन, बुद्धि को ही माना गया है। विशेषकर मैं एक संकेत करता हूँ -

जो भी कालगर्भित और कालातीत पदार्थ हैं उन सबका ज्ञान वेदों के द्वारा होता है। हमारे-आपके जीवन में, अन्तःकरण में, मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार में चारों प्रकार के वेद सन्निहित हैं। हमारे आपके अन्तःकरण में भी वह क्षमता है कि कालगर्भित और कालातीत जितने तत्व होते हैं, सबमें उसकी गति होती है।

मैंने अबतक संकेत किया - यह जो पृथ्वी है इसमें सकल कला और विद्या का सन्निवेश है। बहुत सी कलाओं का उद्भवस्थान आकाश है, बहुत सी कलाओं का उद्भवस्थान वायु है, फिर तेज है, फिर जल है, फिर पृथ्वी है, इन सब तथ्योंको ख्यापित किया। कल त्रिपाठी जी ने लोक-लोकांतर के बारे में कुछ प्रश्न किया था तो मैं संकेत करना उचित समझता हूँ इस सन्दर्भ में कि हमारे-आपके जीवन में ***तयोर्व्यष्टि समिष्टिता..*** व्यष्टि में जो कुछ सामग्री है हमारे-आपके जीवन में, समष्टि में भी है। मैं एक बहुत मोटा उदाहरण देता हूँ - विश्व का मानचित्र या नक्शा लीजिये, ग्लोब लीजिये... भारत कितना क्षेत्रफल घेरेगा? लेकिन भोगौलिक धरातल पर भारत का विस्तृत क्षेत्र है। इसी प्रकार हमारे-आपके जीवन में, पिण्ड में जो कुछ सामग्री है, समष्टि में विशाल रूप में, व्यापक रूप में उसकी उपलब्धि होती है। हमारे-आपके जीवन में मूलाधार है, फिर स्वाधिष्ठान चक्र है (मूलाधार से ऊपर)। ***स्व*** का अर्थ होता है ***प्राण***। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार प्राण का पोषण जल की प्रधानता से

होता है। जल पीने पर हमारे प्राण परिपुष्ट रहते हैं। मूलाधार पृथ्वी लोक है, स्वाधिष्ठान उसके बाद जललोक है, हमारे जीवन में भी लोक-लोकान्तरों की प्रतिष्ठा है। उसी हिसाब से समष्टि में (बाह्य जगत् में) भी लोक-लोकान्तरों की प्रतिष्ठा है। हमारे-आपके जीवन में मणिपूरक चक्र है। वह तेजोमय है, उसमें तेज या अग्नि की प्रधानता है, निवास है उसमें। उसके बाद हमारे-आपके जीवन में अनाहत चक्र है हृदय में, जिसमें वायु की प्रधानता है, जो वायु लोक का प्रतीक है। फिर विशुद्ध... यह जो कण्ठकूप है, इसमें विशुद्ध चक्र, इसमें आकाश की प्रतिष्ठा है। फिर भृकुटी के मध्य में जिसको हम आज्ञाचक्र कहते हैं, इसमें अहम् की प्रधानता है। यह जनःलोक का स्थान है। इसी प्रकार आगे हम देखें तो.. ब्रह्मरन्ध्र.. उसमें महत्तत्व की प्रतिष्ठा है। कल जो प्रश्न किया था त्रिपाठी जी ने, वह ब्रह्मलोक है। वहाँ तो चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्ड में जो सबसे ऊपर है, उसका नाम ब्रह्मलोक है।

भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं। सत्यलोक। हमारे जीवन में जो सहस्रार का स्थान है, यही ब्रह्मलोक का प्रतीक है।

अब मूलाधार के नीचे, ये जो 'भू' के नीचे के लोक हैं, उन सबकी प्रतिष्ठा है। और एक मैं संकेत करता हूँ - ये सब लोक-लोकान्तर हैं या नहीं? तो इस वैज्ञानिक युग में तो लोक-लोकान्तर को सिद्ध करने में बहुत सुगमता है। अगर मंगल नामक कोई ग्रह ही

नहीं है तो मंगल पर पहुँचने के लिये यान को भेजने की आवश्यकता ही क्यों? किसी न किसी यन्त्र के द्वारा मंगल का दर्शन हुआ होगा तब तो मंगल ग्रह तक यान को भेजने का प्रकल्प चलाया गया। और विशेष करके हमको देखना चाहिए कि चन्द्रमा का दर्शन हमको नेत्रों के द्वारा होता ही है। सूर्य का दर्शन होता ही है। भुवः लोक में कौन रहते हैं? यक्ष रहते हैं, गन्धर्व रहते हैं। मनुष्य की अपेक्षा उत्कृष्ट ज्ञान-विज्ञान, आयु, सौन्दर्य सम्पन्न ये हैं। उसके बाद में पितृलोक है, उसके बाद में देवलोक है। देवलोक के बाद में देवताओंके जो राजा इन्द्र हैं उनका निवास है। इन्द्रलोक के ऊपर भी फिर बृहस्पति जी... बृहस्पति जी कौन हैं? जिनका तप, जिनका ज्ञान, जिनका वैभव इन्द्र से भी उच्च है उनका नाम बृहस्पति है। बृहस्पति जी का लोक है। उसके बाद में विराट पुरुष का लोक है। उसके बाद में हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्मा। यही भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं का स्वरूप बताया गया है।

अब तीन प्रकार हैं इन लोकों में पहुँचने के। पहला प्रकार क्या है? सुनकर आश्चर्य होगा। **जीवनकालमें मनुष्य अपने अधिकारकी सीमा में कर्म और उपासनाका समुचित अनुष्ठान करे तो देहत्यागके बाद उसके जीवन में उस बल और वेग का आधान होता है जिससे वह अपने कर्म और उपासनाके स्तर से उन लोकों में से किसी लोक में पहुँच सकता है। पुर्यष्टक सहित जीवकला का उत्क्रमण होता है।** एक टेक्निकल या पारिभाषिक शब्द है- शरीर मुर्दा कब बन जाता है?

शव कव बन जाता है? आठ चीज़ें ज़व शरीर को छोड़ देती हैं जीवकला के सहित, प्रारब्ध क्षय हो जाने पर जिस-जिस कर्म का फल भोगने के लिए हमको यह शरीर प्राप्त हुआ है, उस कर्म का फल भोग लेने पर, आयु की समाप्ति हो जाने पर, जीव पुर्यष्टक को लेकर (आठ प्रकार की पुरियाँ हैं, उनको लेकर) शरीर को छोड़ देता है। तव यह शरीर शव हो जाता है। कहीं सत्यवान के समान वह जीव पुर्यष्टक सहित पुनः शरीर में प्रविष्ट हो जाए तो शव शरीर भी फिर पूर्ववत् काम करने लग जाता है। कैसे वाहर आठ पुरियाँ हैं, अयोध्या, मथुरा.... यह जगन्नाथपुरी आठवीं पुरी है, द्वारकापुरी सातवीं पुरी है, वाहर भी आठ पुरियाँ हैं तो अन्दर भी आठ पुरियाँ हैं। इनका वर्णन मैं करता हूँ संक्षेप में... समय की सीमा में वहुत कुछ कहने का विचार है।

कर्मेन्द्रिय पञ्चक, यह भी एक पुर है। जीव जो है पुर्यष्टक सहित इस शरीर में प्रवेश करता है, और शरीर को छोड़ता है। पाँचों कर्मेन्द्रियों को मिलाकर एक कर दिया तो कर्मेन्द्रिय पञ्चक, फिर ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक, फिर प्राण पञ्चक, फिर अन्तःकरण चतुष्टय या अन्तःकरण पञ्चक। फिर एक उदाहरण देता हूँ - यह एक ताम्र पात्र है, ताम्र धातु (कॉपर) से विनिर्मित एक पात्र है। इसको मैं जहाँ-जहाँ ले जाऊँगा ऊपर-नीचे, अगल-वगल तो धातु जो है ताम्वा, उसकी गति हो ही गयी। क्योंकि यह ताम्रपात्र जो है, ताम्र धातु के

विना न अपनी सत्ता सिद्ध कर सकता है, न उपयोगिता सिद्ध कर सकता है। इसका मतलव जव तक ताम्र धातु (कॉपर) इसको साधे हुए है तभी तक इस पात्र की सत्ता और उपयोगिता है। जहाँ-जहाँ मैं इस पात्र को ले जाऊँगा वहाँ-वहाँ स्वाभाविक रूप से ताम्वे का गमन होगा ही। इसलिए वेदान्त प्रस्थान के अनुसार जिधर मैंने संकेत किया था... पञ्चभूतों को पकड़ लें तो सूक्ष्म शरीर भी पञ्चभूत के कार्य ही सिद्ध होते हैं। तो कर्मेन्द्रिय पञ्चक, ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक, ज्ञान पञ्चक, अन्तःकरण चतुष्टय या अन्तःकरण पञ्चक, उसके वाद तन्मात्र पञ्चक। तन्मात्र पञ्चक का अर्थ होता है पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश के सूक्ष्म रूप जो कि उपादान कारण या मूल matter हैं जिनके द्वारा कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, अन्तःकरण, प्राणों की संरचना होती है। कितने पुर हो गये? कर्मेन्द्रिय पञ्चक, ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक, प्राण पञ्चक, अन्तःकरण चतुष्टय या अन्तःकरण पञ्चक, तन्मात्र पञ्चक... पाँच हो गये। अविद्या, काम और कर्म। अविद्या का नाम है कारण शरीर, गाढ़ी नींद में जिसकी उपलब्धि होती है जिसमें जाकर हमारा अन्तःकरण भी समाहित हो जाता है और प्राण भी जिससे एकीभूत हो जाता है। मलिन सत्त्वगुण प्रधाना प्रकृति जिसको कारण शरीर कहते हैं सुषुप्ति में। तो हमने एक संकेत किया। अविद्या, काम और कर्म... काम माने इच्छा। और कर्म का सन्निवेश हमारे सूक्ष्मशरीर में ही है। और अज्ञानका सन्निवेश सूक्ष्मशरीर में भी है... जब हम 'अहम् अज्ञः' कहते हैं। लेकिन गाढ़ी

नींद में अज्ञान में ही जाकर अन्तःकरण का भी विलय हो जाता है। तो इसी का नाम पुर्यष्टक हो गया। फिर से सुनिये - **कर्मेन्द्रिय पञ्चक, ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक, प्राण पञ्चक, अन्तःकरण चतुष्टय या अन्तःकरण पञ्चक, तन्मात्र पञ्चक, अविद्या, काम और कर्म। दो शब्दों में अगर हम कहना चाहें तो सूक्ष्म और कारण शरीर इसको कहते हैं। इन दोनों को लेकर, इन दोनों के माध्यमसे अभिव्यक्त जो चेतन जीव है, चम्पत हो जाता है तभी शरीर का नाम शव हो जाता है। और** जिस शरीरको ये पुर्यष्टक छू लेते हैं, **जीवकला सहित पुर्यष्टकका जिस शरीरके साथ योग हो जाता है उसी शरीर को हम जीवित शरीर** कहते हैं, तो ये विज्ञान हुआ। तो लोक-लोकान्तरों की दृष्टिसे मैंने कहा।

कल त्रिपाठी जी ने पूछा था कि श्रीमद्भागवत में सप्तद्वीप का वर्णन है... इस पर भी मैं दो-चार वाक्य कहना उचित समझता हूँ। मैंने जो विषय उठाया था - आज हम ब्रह्मलोक जा सकते हैं या नहीं? ऊपर के जो लोक हैं... मंगल ग्रह आदि की बात तो मैं कर रहा हूँ... ऊपर के ही हैं... ऊपर के लोक में जाने की तीन विधा हैं। कौन सी विधा आपको पसंद है उस पर विचार कीजिए। पहली विधा यह है कि जिस-जिस लोक तक पहुँचने के लिए.. पुर्यष्टक सहित जीवकला जिस लोकमें पहुँचने की क्षमता रखती है, उसी तरह का शरीर उसको प्राप्त होता है। तब उस शरीरके द्वारा पुर्यष्टक सहित जीवकला उस

लोकमें जानेमें समर्थ होती है। मैं बहुत बड़ा उदाहरण दे रहा हूँ जिससे आप सुगमता पूर्वक समझ जाएँ - कोटि-कोटि यान्त्रिक, मान्त्रिक, तान्त्रिक विधाओं का आलम्बन लेकर भी कोटि-कोटि कल्प में भी कोई इस स्थूलशरीर को स्वप्न जगत् में पहुँचाने में समर्थ नहीं है। क्या है क्या? यहाँ के जितने सगे-सम्बन्धी, भवन इत्यादि हैं किसी की पहुँच स्वप्न जगत् में नहीं है। **जैसे इस शरीरको किसी भी प्रकार से हम स्वप्न जगत् में नहीं पहुँचा सकते अर्थात् इस शरीर से स्वप्न का दर्शन नहीं हो सकता, एक विधा यह है। उसी प्रकार से जीव, मर्त्यलोक का जो उसे शरीर प्राप्त है उसी शरीर से उर्ध्वलोकों में गमन नहीं कर सकता। लेकिन उर्ध्वलोक में गमन जीव का कैसे होगा? तो जीवनकाल में उस-उस लोक को प्राप्त करने के लिए हमारे वैदिक वाङ्मय में जिसप्रकार के कर्म का, जिस प्रकारकी उपासनाका वर्णन है, दोनोंका समुचित अनुष्ठान अगर उसने किया तो उसके पुर्यष्टक में ऐसी क्षमता प्राप्त होती है जिसके बलपर जीव-कला देहत्याग करने के बाद उस लोक में जाने में समर्थ होती है।** उदाहरण के लिए, हम एक संकेत करते हैं, कोई कार से या जीप से आप यात्रा करते रहें तो जहाँ प्रतिबंधित हो यात्रा वहाँ पर जाकर आपको रोक दिया जाएगा। कर्म और उपासना के बल पर पुर्यष्टक सहित जीव-कला में जितना बल और वेग प्राप्त होता है उतने बल और वेग के बल पर अमुक लोक जाकर के फिर उसकी गति कुण्ठित

हो जाती है, अवरुद्ध हो जाती है, देवदूत रोक देते हैं, आगे नहीं जा सकते।

हमने एक संकेत किया, क्या संकेत किया - भू के बाद भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं.... ये लोकोंका क्रम है। क्रम से ऊपर के लोक हैं ये। लेकिन जिस जीवनमें कर्म और उपासनाकी जितनी क्षमता है उस क्षमताके आधारपर देहत्यागके बाद पुर्यष्टक सहित जीव-कला में उतनी दूर तक ऊर्ध्वलोकोंमें गमन करने की क्षमता होती है। मैं बृहदारण्यक उपनिषद् का उदाहरण देता हूँ , भगवत्कृपासे श्रावण-भाद्र जो बीता उसमें 2 महीने तक 2 घण्टे नित्य शाङ्करभाष्य के आधारपर ब्रह्माजी के लोक का और शरीर का हमने वर्णन किया 60 दिनों में और उससे पहले पहले वर्ष में भी। केवल ब्रह्माजी के लोक का वर्णन हमारे यहाँ 120 या कितने घण्टों में भगवान् ने हमारे मुख से करवाया। अद्भुत ज्ञान-विज्ञान है। एक संकेत करता हूँ - **आज जो ब्रह्माजी के पद पर हैं, आपको सुनकर आश्चर्य होगा मर्त्यलोक में, भारत में, उत्तम कुल में उनका जन्म हुआ था। मनुष्य थे वो। उन्होंने विधिवत् अश्वमेध याग का आलम्बन लिया। इतर फल को लक्ष्य न बनाकर अश्वमेध के जो देवता ब्रह्मा हैं (हिरण्यगर्भ हैं), उन्हीं को लक्ष्य बनाकर अश्वमेध का आलम्बन लिया। जिसके फलस्वरूप देहत्याग के पश्चात् वो ब्रह्माजी के पद पर प्रतिष्ठित हैं।** ब्रह्माजी की आयु भी मैं बता दूँ - 31 नील 10 खरब 40

अरब वर्ष, मर्त्यलोककी गणनाके अनुसार। और ब्रह्मलोक के अनुसार कुल 100 वर्ष की ब्रह्मा जी की आयु होती है। आज जो ब्रह्माजी के पद पर प्रतिष्ठित हैं वे 51वें वर्ष में चल रहे हैं। मर्त्यलोककी दृष्टि से 31 नील, 10 खरब, 40 अरब वर्ष ब्रह्मा जी की आयु होती है। आज जो ब्रह्माजी के पद पर हैं आधी आयु व्यतीत कर चुके हैं। **तो ब्रह्मलोक में जाने के अनुकूल उन्होंने कर्म और उपासना का आलम्बन लिया जिसके फलस्वरूप वो ब्रह्मलोक में आज प्रतिष्ठित हैं। तो हमने संकेत किया कि मर्त्यलोकका मनुष्य ही वेदादिशास्त्रसम्मत कर्म और उपासना का आलम्बन लेकर अपने जीवन में वह बल और वेग अर्जित करता है कि देहत्यागके पश्चात् तत्तत् लोक में उसके द्वारा अर्जित योग्यता (क्षमता) के अनुसार पुर्यष्टक सहित जीवकला का उत्क्रमण होता है।** लोक-लोकान्तरों में जाने की यह एक विधा है। देहत्यागके बाद ही तत्तत् लोक (ऊपर के लोक) की प्राप्ति हो सकती है।

दूसरी विधा है.... चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, मंगलयान पर, चन्द्रयान पर.... यान भेजने वाले, चन्द्रलोक पर यान भेजने वाले निराश न हों। दूसरी विधा है देवर्षि नारद की। देवर्षि नारद की चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड में अबाध / अप्रत्याहत गति है। बेरोकटोक। मैं एक संकेत कर देता हूँ - कोई कामी व्यक्ति हो, जिसकी आँख विकृत है, तो जो सुशीला देवियाँ होती हैं, अपने मुँह

को छिपा लेती हैं। इसका मतलब क्या हुआ? कामी व्यक्तिकी अप्रत्याहत गति नहीं होती है, कहीं कुदृष्टि से न देख दे। लोभी व्यक्ति होगा तो व्यक्ति अपने धन को छिपाने का प्रयास करेंगे, कुदृष्टि से ना देख दे। क्रोधी व्यक्ति होगा तो... अरे वह दुर्वासा कहीं आकर शाप ही न दे दे, गाली गलौच न करे। तो हमारे अपने जीवन में अप्रत्याहत गति हमारी क्यों नहीं होती? काम के कारण, क्रोध के कारण, लोभ के कारण, मोह के कारण। इन सब **मनोविकारों पर जीवनकाल में जो विजय प्राप्त कर लेता है योग सम्पदा के बल पर, उसके जीवन में वह क्षमता आती है कि वह नारद जी के समान चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड में प्राप्त शरीरसे ही जा सकता है, आ सकता। तो एक सिद्ध योगी की गति इन भुवनों में होती है।**

तीसरी बात यान्त्रिक विधा की है। जैसे यान्त्रिक विधा से मंगल ग्रह पर मनुष्यको भेजने की योजना चल रही है। चन्द्रयानके बाद.... चन्द्रयान अगर सफल हो गया... अभी कह रहे थे थोड़ी सी भूलके कारण इतना सफल होने पर कुछ असफलता मिल गई। मान लीजिए कल सफलता मिल जाए तो....? अब हम एक संकेत करते हैं, आगे जो होगा.... मनुष्य... एक है कर्मोपासनाके बल पर, वह मान्त्रिक विधा है। देवर्षि नारद आदि में जो अप्रत्याहत गति है वह तान्त्रिक विधा है, अब यान्त्रिक विधा के द्वारा कोई मङ्गल पर पहुँच जाये, चन्द्रमण्डल पर पहुँच जाये... कल्पना करने में क्या

आपत्ति है... लेकिन होगा क्या, ध्यानपूर्वक सुनिये... वहाँ का लोक उसको दिव्य रूपमें दिखाई नहीं पड़ेगा। वहाँके लोकमें रहने और वहाँके लोकके दिव्य पदार्थोंको देखने योग्य दृष्टि उसको प्राप्त नहीं होगी। मैं उदाहरण देता हूँ, ध्यानपूर्वक इतिहास सुनिये - कर्म और उपासनाके बल पर, संयमके बल पर धर्मराज युधिष्ठिर सदेह स्वर्ग पहुँच गये। सदेह स्वर्ग पहुँचे। इसका अर्थ क्या होता है? कठोपनिषद् का अध्ययन कीजिये, पिता ने कुपित होकर कुछ कह दिया, बेटे ने सोचा क्रोध के कारण सही मेरे पिताकी बात अन्यथा सिद्ध न हो। तपोबलसे वो यमराज के लोक में चले गये, जीवित ही। नचिकेता और यमराज का सम्वाद है या नहीं? उनसे तत्त्वज्ञान ले आये कठोपनिषद् में। कोई-कोई व्यक्ति तपोबलसे ऊर्ध्वलोकों में जा सकता है। धर्मराज युधिष्ठिर मर्त्यलोकके शरीरसे ही कहाँ पहुँच गए? स्वर्ग में। लेकिन देवताओंने क्या अनुनय-विनय किया? सुनकर आपको आश्चर्य होगा। मर्त्यलोककी गति-मति के आधारपर इस स्वर्गलोक के वैभव का, सुख का आप यथेच्छ उपभोग नहीं कर सकते, इसीलिए राजन् आपसे अनुनय-विनय है कि आप तपोबल से, धर्म की निष्ठाके प्रभाव से भले ही स्वर्ग में सदेह पहुँच गये हैं, स्वर्ग की नदी मन्दाकिनीमें गोता लगाकर योगबल से शरीर का त्याग कीजिये। द्रव्यसूक्ष्मविपाकात्मक दिव्य शरीर आपको प्राप्त होगा, उसके माध्यम से दिव्य सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर की अभिव्यक्ति होगी, तभी आप स्वर्गीयसुख का उपभोग कर सकते हैं। इसका

मतलव? मर्त्यलोक का व्यक्ति कदाचित्... अर्जुन चूंकि नर ऋषि के अवतार थे, आपको सुनकर आश्चर्य होगा, समय-समय पर वो, 12 वर्षोंके लिए जो वनवास प्राप्त हुआ था 5 वर्ष तक तो वो इन्द्र के पास (अपने पिता के पास) रहे थे, इन्द्रलोक में। और इन्द्र उनको वेटा समझ करके, इन्द्र के अंश से उत्पन्न हुए थे, अपने गद्दी पर बैठाते थे। जीवनकालमें सदेह अर्जुन इन्द्रलोक में पहुँच सकते थे, महाभारत में इसका विस्तृत वर्णन है। स्वर्गारोहण के समय भले ही उनको देह छोड़ना पड़ा लेकिन जीवनकाल में 5 वर्षों तक दिव्यलोक में (इन्द्रलोक) में ही वने रहे। तो हमने संकेत किया कि तत्तत् लोक में पहुँचकर भी वहाँ का सुख यथेच्छ भोग सकें तो जैसे हम स्वप्न जगत् में पहुँचना चाहेंगे तो मनोमय शरीर हमको धारण करना पड़ेगा। इस शरीरकी गति स्वप्न में नहीं है। इसी प्रकार **कोई यान्त्रिक विधा से, कल्पना कीजिए उर्ध्वलोकमें चला भी जायेगा तो उर्ध्वलोकका दर्शन उसको इन प्राकृत नेत्रोंसे नहीं हो सकता। वहाँ यान्त्रिक विधासे जा करके भी वहाँ के सुख का, वैभव का दर्शन आदि उपभोग नहीं हो सकता है।**

अव रह गयी वात ***'सप्तद्वीपा च मेदिनी'***, आजकल के भूगोल के जानने वाले क्षारसिन्धु से परिवेष्टित जो भूभाग है उसी के सात विभाग कर लेते हैं लेकिन श्रीमद्भागवत में उत्तरोत्तर क्षेत्रफल में द्विगुणता है और दिव्यता भी है। ***'सप्तद्वीपा च मेदिनी'***.... छः द्वीपों

का दर्शन हमको नहीं हो रहा है आजकल। तो पृथ्वी संकुचित हो गई या नहीं? आजकल की जो पृथ्वी है, केवल एक द्वीप वाली है, क्षारसिन्धु से परिवेष्टित है। वाकी जो छः द्वीप हैं उनकी दिव्यता का वर्णन है, वह केवल काव्य नहीं है ऐतिह्य तथ्य है, भोगौलिक तथ्य है। फिर उनका दर्शन क्यों नहीं होता? इसका उत्तर क्या दिया गया है? एक ही वाक्य में संकेत करता हूँ, महायन्त्रों का प्रचुर आविष्कार और प्रयोग हो तो उसका फल क्या होता है? बुरा न मानो होली है, हम विकासके अत्यन्त पक्षधर हैं लेकिन विकासके गर्भ से विस्फोट न निकले इसके लिए सावधान रहने की भी आवश्यकता है। मैंने क्या कहा? मैंने यह कहा कि **महायन्त्रों का प्रचुर आविष्कार और प्रयोग भी होता रहे, कोई दिव्य वस्तु और व्यक्ति भी दृष्टिगोचर हो जाये सम्भव नहीं है।**

रामचरितमानस में कैकेयीने महाराजाधिराज दशरथको ताना कसते हुए एक उदाहरण दिया - ***दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला।।*** राजन् एक कालावच्छेदेन कोई ठहाका मारकर हँस सके और गाल फुलाकर रह सके, सम्भव नहीं। ठहाका मारकर हँसेगा तो गाल फुला कर नहीं रह सकता, गाल फुला कर रहेगा तो ठहाका मारकर हँस नहीं सकता है। इसी प्रकार हमने एक संकेत किया कि **सात द्वीपों वाली जो पृथ्वी है उनमें छः द्वीप लुप्त हो चुके हैं, माने हमारे जीवनमें वह क्षमता नहीं है जिसके बल पर... वह दृष्टि हमको प्राप्त नहीं है, उतना तप प्राप्त नहीं है कि हम**

बाकी छः द्वीपोंको देख सकें या उसके आनन्दका अनुभव कर सकें। एक उदाहरण देता हूँ, आप सुगमतापूर्वक समझ जायेंगे। ***करेहु कल्प भरि राजु.....*** रामचरितमानस तो सामान्य व्यक्ति हिन्दी वाले भी जानते हैं। विभीषणको सीता जी का वरदान प्राप्त है, हनुमानजीको तो चिरंजीव का वरदान प्राप्त है ही, भगवान् ने भी कहा ***करेहु कल्प भरि राजु.....*** आज श्रीलङ्का है न, लङ्का हमको दृष्टिगोचर है क्या? तो लङ्का के राजा हमको विभीषण दिखते हैं क्या? पहले कोई भंडार नायक और कौन-कौन, अब कौन हैं... इसका मतलब क्या है? लेकिन महाभारत में सहदेव जी जब दक्षिण विजय के लिए जा रहे थे, महाभारत में माने कलयुग के प्रारम्भ में द्वापर के अन्त में सहदेव जी गये... तो विभीषण जिस राज्य में राज कर रहे थे, लङ्का गये। उसके द्वार पर जाकर उन्होंने दूत को भेजा कि यहाँ के राजा विभीषण या तो हार मानें, भेंट लेकर आवें या युद्ध करें। युद्ध में हमको जीत लें कोई बात नहीं, अगर हमने जीत लिया तो... विभीषण जी ने सोचा कि मैं राम जी के ही समय का व्यक्ति हूँ, लङ्का विजय में मेरा हाथ रहा है, अगर आजकल के इस बाल-गोपाल सहदेव को मैंने युद्ध में जीत लिया तो यह तो मेरा कोई पराक्रम नहीं माना जाएगा, हार गया तो उपहास का पात्र बनूँगा। अब क्या करूँ? युद्ध करूँ या भेंट लेकर जाऊँ? फिर सोचा मेरे रामजी ही कृष्ण बनकर आए हैं, उनके अनुग्रह से ये लोग अभी पनप रहे हैं तो अच्छा है हार मान लूँ और बिना युद्ध के ही भेंट लेकर जाऊँ। इसका मतलब

विभीषण का दर्शन सहदेव को हुआ। श्रीलङ्का का दर्शन भी सहदेव को हुआ, हम लोगों को नहीं हो रहा है। **तो बहुत से ऐसे लोक भी हैं, पदार्थ भी हैं जिनकी विद्यमानता होने पर भी महायन्त्रिक युग में हमलोगों की दृष्टि में वह क्षमता नहीं है, भौगोलिक धरातल पर उनकी विद्यमानता होने पर भी हम उनका दर्शन कर सकें।**

अब पाँच-सात मिनट की सीमा में हम एक संकेत करते हैं... हमने कहा था कि विज्ञान को दिशाहीन होने से बचाने के लिए क्या-क्या सावधानी बरतने की आवश्यकता है। उसमें हमने दो बातें मुख्य रूप से कहीं - **सृष्टि संरचना के प्रयोजन का जिसको ज्ञान नहीं होगा वह विज्ञान को दिशाहीन होने से बचा नहीं सकता** और जीवों की प्रवृत्ति और निवृत्ति का जो नियामक है उसका ज्ञान नहीं होगा.... दोनों में सामञ्जस्य है। सृष्टि की संरचना का जो वास्तविक उद्देश्य है जीवों की चाह का भी वास्तविक उद्देश्य उसी की प्राप्ति है। तो हमने एक संकेत किया।

अभी क्या है, हम भौतिकता के पक्षधर हैं और भी बहुत से यन्त्र आदि का अविष्कार करते रहें लेकिन एक संकेत करना आवश्यक है जिस पर ध्यान केन्द्रित किये बिना जीवन दिशाहीन होने से बच सके, यह कह पाना कठिन है।

चार शाप भौतिकवादियों को प्राप्त हैं - भगवद्गीता के तीसरे अध्याय के अनुसार बोल रहा हूँ, सावधान! भौतिकवादियों को भगवान् श्री कृष्ण का, आध्यात्मिक मनीषियों का, उपनिषद् आदि का पहला शाप क्या प्राप्त है? जीवन भर जानकारी प्राप्त करते रहो, **'जो जानना था जान चुका' इस प्रकार की अनुभूति नहीं होगी, ज्ञातव्य बना ही रहेगा, पहला शाप।** ***'यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते'*** मैंने पहले कहा था भगवान् श्री कृष्ण का वचन गीता के सातवें अध्याय आदि में ढूंढिये। ज्ञातव्य का अन्त भौतिक विधा से नहीं होगा। क्योंकि यह एक तत्त्व को, भगवत्तत्व को, आत्मतत्त्व को या ब्रह्म तत्त्व को या स्वप्रकाश ज्ञान को ही जब तक जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण (maker और matter) नहीं मानेंगे, तब तक एक विज्ञान, ***कस्मिन् विज्ञाते सर्वं इदं विज्ञातं भवति***, एक विज्ञान से सर्वविज्ञान की पूर्ति नहीं होगी। तो आजकल जो मनुष्य है वो हृदय पर हाथ रखकर 'जो जानना था जान चुका' यह अनुभव नहीं कर सकता तो ज्ञातव्य शेष रह जाता है। **जो पाना था पा चुका, मेरा कोई प्राप्तव्य शेष नहीं है। इस प्रकार की अनुभूति भौतिकवादी के जीवन में कभी हो ही नहीं सकती। और जो कर्त्तव्य था उसे कर चुका, मेरा कोई कर्त्तव्य शेष नहीं है...** लेकिन अध्यात्म की विशेषता क्या है इस पर ध्यान दीजिए -

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते।।
(भगवद्गीता 3.17)

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चित् अर्थव्यपाश्रयः।।
(भगवद्गीता 3.18)

कृतकृत्यश्च भारत (भगवद्गीता 15.20)

और सातवें अध्याय में ***यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते....***

तत्तवज्ञ का, आध्यात्मिक मनुष्य का कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं रहता, कर्त्तव्य शेष नहीं रहता, प्राप्तव्य शेष नहीं रहता। अगर ज्ञातव्य शेष बना रहा, कर्त्तव्य शेष बना रहा, प्राप्तव्य शेष बना रहा तो जीवन की सार्थकता नहीं मानी जा सकती।

एक और संकेत करके वचन को विराम देता हूँ - आप लोग तो बहुत अच्छे हैं, किसी ने शास्त्र पर कटाक्ष नहीं किया। कल आप लोगों की भावना से मैं बहुत प्रमुदित हुआ कि स्वतन्त्र भारत के

राजनेताओं ने कलुषित मस्तिष्क से पाश्चात्य जगत् की कूटनीति का शिकार होकर मन्वादि शास्त्रों को, धर्मनिष्ठा आदि को कोसने का प्रयास किया। कल हमारे बलराम जी ने कितना बढ़िया भाव व्यक्त किया। अमेरिका में रहते हैं, प्रौढ़ वैज्ञानिक हैं, विश्व में ख्याति प्राप्त हैं, धर्म से ओतप्रोत भावों को व्यक्त किया....

पचीस माताएँ खड़ी कर दें, इनमें माताजी ये हैं, बहन जी ये हैं, भाभीजी ये हैं, पत्नीजी ये हैं, इसका ज्ञान कैसे होगा? और धर्म को स्वीकार नहीं करेंगे तो हाड़-मांस के शरीर की दृष्टि से माता, बहन इत्यादि की विभाजक रेखा नहीं होगी।

पचीस पुरुषों को खड़ा कर दीजिये, अगर हम धर्म को नहीं मानते हैं, ये पिता हैं, ये भाई हैं, इन सबका विभाजन कैसे होगा? तो धर्म को तो हमको स्वीकार करना पड़ेगा। ***धारणात् धर्म....*** धर्म का पहला लक्षण है, सिद्ध लक्षण है...धर्म से हम कैसे बचेंगे जी? पार्थिव प्रपञ्च को धारण करने वाली पृथ्वी है, वो धर्म है, सिद्ध धर्म का लक्षण। पृथ्वी को धारण करने वाला जल, जल को धारण करने वाला तेज, तेज को धारण करने वाला वायु, वायु को धारण करने वाला आकाश, आकाश को धारण करने वाला अव्यक्त। अव्यक्त को प्रतिष्ठित करने वाला, उसमें सत्ता, चित्ता, प्रियता का अपनी विद्यमानता से आधान करने वाला आत्मतत्त्व। ***धारणात् धर्म....*** यह धर्म का अमरकोश इत्यादि में, महाभारत के शांतिपर्व में कर्णपर्व में, मत्स्यपुराण में क्या लक्षण दिया गया - व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है। दूसरा

अर्थ होता है... **यज्ञ, दान, तप, व्रत.... इनके द्वारा जीवन में अद्भुत बल और वेग का आधान होता है।** मैं मनुस्मृति का एक वचन पढ़ता हूँ - ***महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः...*** **महायज्ञों के द्वारा, यज्ञों के द्वारा, अङ्गन्यास के द्वारा, करन्यास के द्वारा, भूशुद्धि के द्वारा, भूतशुद्धि के द्वारा देह, इन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरण में उस दिव्यता की, क्षमता की अभिव्यक्ति होती है, जिसके बल पर व्यक्ति भगवत्तत्व, ब्रह्मतत्व के साक्षात्कार में समर्थ होता है।** तो हमने एक संकेत किया कि साध्य कोटि का धर्म अगर नहीं है, सिद्ध कोटि का धर्म नहीं है तो जीवन व्यर्थ ही है।

तो हमने एक संकेत किया कि कौन सा शाप प्राप्त हुआ? **कर्त्तव्य का अन्त भौतिकवादियों के द्वारा सम्भव नहीं, ज्ञातव्य का अन्त भौतिकवादियों के द्वारा सम्भव नहीं, प्राप्तव्य का अन्त भौतिकवादियों के द्वारा सम्भव नहीं। भौतिकवादियों के जीवन में एक और त्रुटि क्या होती है - ये जितने भेद हैं, समस्त भेदों का सदुपयोग करता हुआ व्यक्ति निर्भेद परमात्मा तक पहुँच सके, अध्यात्म का आलम्बन लिये बिना यह सम्भव नहीं।** वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था को जो कोसने वाले हैं, मैं अभी अर्थशास्त्र पर बोलना नहीं चाहता, वर्णव्यवस्था आश्रमव्यवस्था को माने बिना आर्थिक विपन्नता और विषमता बनी ही रहेगी विश्व में, इस पर कभी संयोग सजने पर मैं बोलूँगा अर्थशास्त्र पर।

अभी केवल संकेत करता हूँ - हमारे ऊपर क्या कोई आक्षेप करेगा? शास्त्रों के ऊपर पूर्वपक्ष क्या ख्यापित करेगा? महाभारत का एक वचन मैं उद्धृत करता हूँ -

पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम्।
लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम्।।
यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः।

बहुत अच्छा उदाहरण है, पूर्वपक्ष ले लीजिये - *अरे भाई पाञ्चभौतिक शरीर हमारे-तुम्हारे सबके हैं, आत्मा की दृष्टि से भी एकत्व है, शरीर की दृष्टि से भी एकत्व है फिर यह ब्राह्मण, यह क्षत्रिय, यह वैश्य, यह क्या बला है? उपद्रव है नहीं तो और क्या है!*

इससे अधिक पूर्वपक्ष क्या हो सकता है? स्वयं पूर्वपक्ष हमारे ऋषियों ने प्रस्तुत किया - ***पञ्चभूतशरीराणां सर्वेषां सदृशात्मनाम्। लोकधर्मे च धर्मे च विशेषकरणं कृतम्।। यथैकत्वं पुनर्यान्ति प्राणिनस्तत्र विस्तरः।...***

इसका उत्तर सुनिए - इसका उत्तर यह है, प्रकृतिप्रदत्त जितने भेद हैं वो व्यवहार के साधक हैं या बाधक? हथेली एक है उँगलियाँ पाँच हैं, अगर यूँ हो जाये तो (मुष्टिका बनाते हुए)? पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, आम, अमरूद, प्रकृतिप्रदत्त जितने भेद हैं वो

व्यवहार के साधक हैं। इन सबको मिटा देने का अर्थ है महाप्रलय की अवस्था। महाप्रलय में क्या होगा? ब्रह्मभावापत्ति होने पर भी कृतार्थता नहीं होगी। सृष्टि की संरचना न हो भेद का आलम्बन लिए बिना, अभेद तक पहुँच नहीं सकते। ***उपाय सोऽवताराय...*** गौडपादाचार्य जी ने कहा सृष्टि का आलम्बन लेकर ही सृष्टि का अतिक्रमण हो सकता है। इन भेदों की रचना, यह ब्राह्मण इत्यादि इन भेदों की रचना क्यों की गई? सकल भेदभूमियों का सदुपयोग करता हुआ व्यक्ति निर्भेद परमात्मा तक पहुँच सके, शास्त्रसम्मत जो भेद है... फिर से सुनिये, भगवान् शङ्कराचार्य जी ने अपने भाष्य में लिखा है - अगर कोई शास्त्रसम्मत भेद को स्वीकार नहीं करता, उसके जीवन में दो अयोग्यता बनी रहेंगी। वह भेद का सदुपयोग न करने के कारण। भेद का सदुपयोग नहीं कर सकता, निर्भेद परमात्मा तक पहुँच नहीं सकता। काँटे से काँटा निकलता है। प्रकृतिप्रदत्त जितने भेद हैं सबका अतिक्रमण करने का बल और वेग हमारे जीवन में प्राप्त हो इसीलिए वर्णाश्रम व्यवस्था आदि हैं। यह केवल व्यक्ति की कल्पना है, ऐसा मत मानिये। इनका आलम्बन लिये बिना समग्र भेद का हम सदुपयोग नहीं कर सकते और निर्भेद परमात्मा तक पहुँच नहीं सकते।

तो आज के प्रवचन का सार यह निकला, **जो भौतिकवादी हैं उनको पहला शाप यह प्राप्त है - अतीन्द्रिय पदार्थ तक आपके मन**

की गति नहीं होगी क्योंकि इन्द्रियों की गति केवल वर्तमान तक होती है। इन्द्रियभावापत्ति और विषयलम्पटता के कारण जितने भौतिकवादी हैं उनके मन की गति की वर्तमान तक ही होती है, अतीन्द्रिय पदार्थों तक नहीं होती। पहली बात यह है। और जो केवल वर्तमान को ध्यान में रखकर विकास को परिभाषित और क्रियान्वित करेंगे उसके गर्भ से विस्फोट निकलेगा जैसा कि आजकल निकल रहा है।

दूसरे, कर्त्तव्य का अन्त नहीं होगा भौतिक विधा से, ज्ञातव्य का अन्त नहीं होगा, प्राप्तव्य का अन्त नहीं होगा।

उसके बाद क्या है? उसके बाद मैंने कहा - भेद का सदुपयोग भौतिकवादी नहीं कर सकते और समग्र भेदों का सदुपयोग करते हुए निर्भेद परमात्मा तक नहीं पहुँच सकते।

अन्त में, यह भौतिकवादी, अध्यात्मवादी, यह विभाजक रेखा ही नहीं बनती है। भौतिकवादी किसको कहेंगे जी? पाँच भूतों का ही जिनको ज्ञान नहीं है, उनको भौतिकवादी कहेंगे?

अध्यात्म... क्या कहते हैं जी? हाथी के पाँव में सबका पाँव। अध्यात्म को अपना लिया साङ्गोपाङ्ग, गीता आदि के अनुसार, तो कुछ जानना शेष रहेगा क्या? कुछ करना शेष रहेगा क्या? भौतिकवाद पृथक् से सिद्ध ही नहीं होता। पञ्चभूतों की रचना भी तो

भौतिकवादियों को नहीं मालूम है। आकाश का अस्तित्व है तो किस प्रकार है यह भी तो ज्ञान आजकल भौतिकवादियों को नहीं है। अध्यात्म तो पूरा हम स्वीकार कर लेते हैं तो उसी में विद्या भी है, कला भी है, सबकुछ है। भौतिक का मतलब पञ्चभूत भी है, उसके कार्य भी सब हैं, चौरासी लाख योनियाँ हैं, सभी प्रकार के प्राणी हैं, पदार्थ हैं। अध्यात्म के गर्भ में तो सब कुछ है। भौतिकवाद पृथक् से होता नहीं। जब भौतिकवाद हम पृथक् से कहते हैं तो फिर उन्माद छा जाता है।

तो भौतिकवादियों को इतने शाप प्राप्त हैं - कर्त्तव्य का अन्त नहीं, प्राप्तव्य का अन्त नहीं, ज्ञातव्य का अन्त नहीं और वर्तमान के अतिरिक्त अतीन्द्रिय पदार्थ में गति नहीं, भेदों का सदुपयोग नहीं, निर्भेद परमात्मा तक पहुँच नहीं सकते। अतः अध्यात्मवाद के अन्तर्गत ही भौतिकवाद है। तो आज के प्रवचन का सार यह हुआ- दर्शन, विज्ञान और व्यवहार / श्रुति, युक्ति और अनुभूति तीनों में सामञ्जस्य साधकर हम चलेंगे तो बहुत अच्छा काम होगा। मोटी भाषा में, बहुत महत्वपूर्ण चीज़ है।

रामचरितमानस के अनुसार दो वाक्य कहकर मैं वचन को विराम देता हूँ - नीति, प्रीति, स्वार्थ और परमार्थ में सामञ्जस्य साधकर जीवन सार्थक होता है। नीति, प्रीति... सबमें सामञ्जस्य

साधने की क्षमता नहीं है। नीति को पालने वाले कर्कश हो जाते हैं। प्रायः सबसे भिड़ते रहते हैं नीति के नाम पर।

और प्रीति को पालने वाले - *दिल के टुकड़े हज़ार हुए कोई यहाँ गिरा, कोई वहाँ गिरा।* प्रीति वाले नीति का निर्वाह नहीं कर पाते और नीति के पक्षधर प्रीति का निर्वाह नहीं कर पाते। लेकिन शास्त्र क्या कहता है - नीति और प्रीति में सामञ्जस्य। **स्वार्थ के पीछे पड़े रहने वाले परमार्थ तक नहीं पहुँच पाते। केवल परमार्थ के नाम पर फिर दाने-दाने के लिए तरस जाते हैं। तो हमारे यहाँ नीति के साथ प्रीति, व्यवहार के साथ परमार्थ को साधा गया है,** तो भौतिकता की बिल्कुल उपेक्षा नहीं है क्योंकि पञ्चभूत जो है वह अध्यात्म के बाहर थोड़े हैं। हमारा शरीर ही पाञ्चभौतिक है, आत्मा से ही परमात्मा से ही पञ्च भूतों की उत्पत्ति हुई है। तो हाथी के पाँव में सबका पाँव। केवल विज्ञान में अध्यात्म नहीं समा सकता, सम्भवप्रमाण होता है। 100 रुपया कह दिया तो उसमें 75, 95, 99 तक की सिद्धि हो ही गई। अध्यात्म को स्वीकार कर लेने पर भौतिकवाद अपने आप आ जाता है। केवल भौतिकवाद कहने पर अध्यात्म उसमें समा नहीं सकता। इसलिए हमने संकेत किया कि दर्शन, विज्ञान, व्यवहार में सामञ्जस्य साधकरके चलने पर सब कुछ भला हो सकता है।

नारायण